श्री महावीराय नमः

श्री कुशलरत्नगजेन्द्रगणिभ्यो नमः

जय गुरु हीरा

जय गुरु मान

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए

(ज्ञान समस्त द्रव्यों का प्रकाशक है)

जैन सिद्धान्त रत्नाकर

ग्यारहवीं कक्षा

अ. भा. श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

जोधपुर

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड

प्रधान कार्यालय :

घोड़ों का चौक, जोधपुर -342 001 (राजस्थान)

फोन : 0291-2630490 फैक्स : 0291-2630490, 2636763

****

उनतीसवाँ अध्ययन : सम्यक्त्व पराक्रम

सम्मत्त-परक्कमे : एगुणतीसइमं अज्झयणं

सम्यक्त्व-पराक्रम का अन्तिम फल : मोक्षप्राप्ति-

मूल- सुयं मे आउसं! तेणं भगवया एवमक्खायं-'इह खलु सम्मत्त-परक्कमे नामं अज्झयणे समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइए। जं सम्मं सद्दहित्ता, पत्तिइत्ता, रोयइत्ता, फासित्ता, पालइत्ता, तीरित्ता, कित्तइत्ता, सोहइत्ता, आराहित्ता आणाए अणुपालइत्ता बहवे जीवा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिनिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति।'

अन्वयार्थ- आउसं- हे आयुष्मन्! **मे सुयं-** मैंने सुना है, **तेण भगवया-** उन भगवान् ने, **एवं-** इस प्रकार, **अक्खायं-** कहा था- **'इह खलु-** इसी (जिनप्रवचन) में, **कासवेणं समणेणं भगवया महावीरेणं-** काश्यपगोत्रीय श्रमण भगवान महावीर ने, **सम्मत्त-परक्कमे नाम अज्झयणे-** सम्यक्त्व-पराक्रम नामक अध्ययन का, **पवेइए-** प्रतिपादन किया है; **जं-** जिस (सम्यक्त्व-पराक्रम नामक अध्ययन) का, **सम्मं-** सम्यक्, **सद्दहित्ता-** श्रद्धान करके, **पत्तिइत्ता-** प्रतीति करके, **रोयइत्ता-** रुचि करके, **फासित्ता-** स्पर्श करके, **पालइत्ता-** पालन करके, **तीरित्ता-** पार करके, **कित्तइत्ता-** कीर्त्तन करके, **सोहइत्ता-** शुद्ध करके, **आराहित्ता-** आराधन करके, **आणाए अणु-पालइत्ता-** गुरु-आज्ञानुसार निरन्तर पालन करके, **बहवे जीवा-** बहुत से जीव, **सिज्झंति-** सिद्ध होते हैं, **बुज्झंति-** बुद्ध होते हैं, **मुच्चंति-** मुक्त होते हैं, **परिनिव्वायंति-** परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं, (और) **सव्वदुक्खाणं-** समस्त दुःखों का, **अंतं करेंति-** अन्त (समाप्त) करते हैं।

सम्यक्त्व-पराक्रम के 73 सूत्रों के नाम-

मूल- तस्स णं अयमट्ठे एवमाहिज्जइ, तं जहा- 1.संवेगे, 2.निव्वेए, 3.धम्मसद्धा, 4.गुरु साहम्मिय-सुस्सूसणया, 5.आलोयणया, 6.निंदणया, 7.गरहणया। 8. सामाइए, 9.चउव्वीसत्थए, 10.वंदणे, 11.पडिक्कमणे, 12.काउस्सग्गे, 13.पच्चक्खाणे, 14.थव-थुइ-मंगले, 15.कालपडिलेहणया, 16.पायच्छित्तकरणे, 17.खमावणया, 18.सज्झाए, 19.वायणया, 20.पडिपुच्छणया, 21.परियट्टणया, 22.अणुप्पेहा, 23.धम्मकहा, 24.सुयस्स आराहणया, 25. एगग्ग-मण-संनिवेसणया। 26.संजमे, 27.तवे, 28.वोदाणे, 29.सुहसाए, 30.अपडिबद्धया, 31.विवित्तसयणासण-सेवणया, 32.विणियट्टणया, 33.संभोग-पच्चक्खाणे, 34.उवहि-पच्चक्खाणे, 35.आहार-पच्चक्खाणे, 36.कसाय-पच्चक्खाणे, 37.जोग-पच्चक्खाणे, 38.सरीर-पच्चक्खाणे, 39.सहाय-पच्चक्खाणे, 40.भत्त-पच्चक्खाणे, 41.सब्भाव-पच्चक्खाणे, 42.पडिरूवणया, 43.वेयावच्चे, 44.सव्व-गुण- संपण्णया, 45.वीयरागया, 46. खंती, 47.मुत्ती, 48.अज्जवे, 49.मद्दवे, 50.भावसच्चे, 51.करणसच्चे, 52.जोगसच्चे, 53.मण-गुत्तया, 54.वय-गुत्तया, 55.काय-गुत्तया, 56.मण-समाधारणया, 57. वय-समाधारणया, 58.काय- समाधारणया, 59.नाण-संपन्नया, 60.दंसण-संपन्नया, 61.चरित्त-संपन्नया, 62.सोइंदिय-निग्गहे, 63.चक्खिंदिय-निग्गहे, 64.घाणिंदिय-निग्गहे,

65.जिब्भिंदिय-निग्गहे, 66.फासिंदिय- निग्गहे, 67.कोह-विजए, 68.माण-विजए, 69. माया-विजए, 70.लोभ-विजए, 71.पेज्ज-दोस-मिच्छादंसण-विजए, 72.सेलेसी, 73.अकम्मया।

अन्वयार्थ– तस्स णं– उस (उक्त सम्यक्त्व–पराक्रम) का, **अयमट्ठे–** यह अर्थ (अभिधेय) है, (जो), **एवं–** इस प्रकार, **आहिज्जइ–** कहा जाता है। **तं जहा–** जैसे कि– **संवेगे–** संवेग, **निव्वेए–** निर्वेद, **धम्मसद्धा–** धर्मश्रद्धा, **गुरु–साहम्मिय– सुस्सूसणया–** गुरु और साधर्मिक की शुश्रूषा, **आलोयणया–** आलोचना, **निंदणया–** निन्दना, **गरहणया–** गर्हणा, **सामाइए–** सामायिक, **चउव्वीसत्थए–** चतुर्विंशति (जिन)–स्तव, **वंदणए–** (गुरु) वन्दना, **पडिक्कमणं–** प्रतिक्रमण, **काउस्सग्गे–** कायोत्सर्ग, **पच्चक्खाणे–** प्रत्याख्यान, **थव–थुइ–मंगले–** स्तव–स्तुति–मंगल, **काल–पडिलेहणया–** काल–प्रतिलेखना, **पायच्छित्तकरणे–** प्रायश्चित्तकरण, **खमावणया–** क्षामणा–क्षमापना, **सज्झाए–** स्वाध्याय, **वायणया–** वाचना, **पडिपुच्छणया–** प्रतिपृच्छा, **परियट्टणा–** परावर्तना=पुनरावृत्ति, **अणुप्पेहा–** अनुप्रेक्षा, **धम्मकहा–** धर्मकथा, **सुयस्स आराहणया–** श्रुत–आराधना, **एगग्ग–मण–संनिवेसणया–** मन को एकाग्रता में स्थापित करना, **संजमे–** संयम, **तवे–** तप, **वोदाणे–** व्यवदान=विशुद्धि, **सुहसाए–** सुखसाता, **अप्पडिबद्धया–** अप्रतिबद्धता, **विवित्तसयणासण– सेवणया–** विविक्त शयन–आसन–सेवन, **विणियट्टणा–** विनिवर्तना (विषय–वासना से निवृत्ति), **संभोग–पच्चक्खाणे–** संभोग–प्रत्याख्यान, **उवहि–पच्चक्खाणे–** उपधि (उपकरण) का प्रत्याख्यान, **आहार पच्चक्खाणे–** आहार–प्रत्याख्यान, **कसाय–पच्चक्खाणे–** कषाय–प्रत्याख्यान, **जोग–पच्चक्खाणे–** योग (मन–वचन–काय–व्यापार) का प्रत्याख्यान, **सरीर–पच्चक्खाणे–** शरीर–प्रत्याख्यान, **सहाय–पच्चक्खाणे–** सहाय प्रत्याख्यान, **भत्त पच्चक्खाणे–** भक्त (भोजन) का प्रत्याख्यान, **सब्भावपच्चक्खाणे–** सद्भाव–प्रत्याख्यान, **पडिरूवया–** प्रतिरूपता, **वेयावच्चे–** वैयावृत्त्य (सेवा), **सव्व–गुण–संपण्णया–** सर्व–गुण सम्पन्नता, **वीयरागया–** वीतरागता, **खंती–** क्षांति (क्षमा), **मुत्ती–** मुक्ति (निर्लोभता), **अज्जवे–** ऋजुता=सरलता, **मद्दवे–** मृदुता, **भावसच्चे–** भावसत्य, **करणसच्चे–** करण–सत्य, **जोगसच्चे–** योग सत्य, **मणगुत्तया–** मनोगुप्ति, **वयगुत्तया–** वचन–गुप्ति, **कायगुत्तया–** काय–गुप्ति, **मण–समाधारणया–** मन– समाधारणा, **वय–समाधारणया–** वचन समाधारणा, **काय– समाधारणया–** काय समाधारणा, **नाणसम्पन्नया–** ज्ञान–सम्पन्नता, **दंसण–सम्पन्नया–** दर्शन–सम्पन्नता, **चरित्त सम्पन्नया–** चारित्र सम्पन्नता, **सोइंदिय निग्गहे–** श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह, **चक्खिंदियनिग्गहे–** चक्षुरिन्द्रिय निग्रह, **घाणिंदिय–निग्गहे–** घ्राणेन्द्रिय निग्रह, **जिब्भिंदियनिग्गहे–** रसनेन्द्रिय निग्रह, **फासिंदिय–निग्गहे–** स्पर्शेन्द्रिय निग्रह, **कोह–विजए–** क्रोध–विजय, **माण–विजए–** मान–विजय, **माया–विजए–** माया–विजय, **लोह–विजए–** लोभ–विजय, **पेज्ज–दोस–मिच्छादंसण–विजए–** प्रेय (राग)–द्वेष–मिथ्यादर्शन विजय, **सेलेसी–** शैलेशी, **अकम्मया–** अकर्मता।

प्रथम सूत्र : संवेग–

मूल– (प्र.) संवेगेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) संवेगेणं अणुत्तरं धम्मसद्धं जणयइ।

अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ।

अणंताणुबंधी–कोह–माण–माया–लोभे–खवेइ। नवं च कम्मं न बंधइ। तप्पच्चइयं च मिच्छत्तविसोहिं काऊण दंसणाराहए भवइ। दंसण–विसोहीए य णं विसुद्धाए अत्थेगइए जीवे तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ। विसोहीए य णं विसुद्धाए तच्चं पुणो भवग्गहणं नाइक्कमइ।

अन्वयार्थ– भंते! भगवन् (भदन्त)! **संवेगेणं–** संवेग (मोक्षाभिलाषा) से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है?

संवेगेणं– संवेग से, (जीव) **अणुत्तरं–** अनुत्तर–उत्कृष्ट, **धम्मसद्धं–** श्रुत–चारित्ररूप धर्म श्रद्धा को, **जणयइ–** प्राप्त होता है, **अणुत्तराए धम्मसद्धाए–** अनुत्तर धर्मश्रद्धा से, **हव्वं–** शीघ्र ही, **संवेगं–** संवेग, **आगच्छइ–** आता है (जिससे) **अणंताणुबंधी–** अनन्तानुबंधि, **कोह–माण–माया–लोभे–** क्रोध, मान, माया और लोभ का, **खवेइ–** क्षय करता है, **च–** और फिर, **नवं कम्मं–** नये कर्मों को, **न बंधइ–** नहीं बांधता, **तप्पच्चइयं–** उस (अनन्तानुबन्धी कषाय–क्षय) के निमित्त (कारण) से, **मिच्छत्त विसोहिं–** मिथ्यात्व– विशुद्धि, **काऊण–** करके, (जीव), **दंसणाराहए–** दर्शनाराधक, **भवइ–** होता है, **दंसण–विसोहीए–** दर्शन–विशोधि के द्वारा, **विसुद्धाए–** विशुद्ध होने से, **अत्थेगइए जीवे–** कई एक (भव्य जीव), **तेणेव भवग्गहणेणं–** उसी जन्म से, **सिज्झइ–** सिद्ध=मुक्त हो जाते हैं, **च–** और (कुछ ऐसे हैं जो), **विसोहीए य णं विसुद्धाए–** दर्शन विशोधि से विशुद्ध होने पर, **तच्चं पुणो भवग्गहणं–** तीसरे भव का तो, **न– अइक्कमइ–** अतिक्रमण नहीं करते (अर्थात्–तृतीय जन्म में तो अवश्य ही उनका मोक्ष हो जाता है)।

द्वितीय सूत्र : निर्वेद-

मूल– (प्र.) निव्वेएणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) निव्वेएणं दिव्व-माणुस-तेरिच्छिएसु कामभोगेसु निव्वेयं हव्वमागच्छइ। सव्व विसएसु विरज्जइ। सव्व-विसएसु विरज्जमाणे आरम्भ परिग्गह परिच्चायं करेइ। आरम्भ परिग्गह परिच्चायं करेमाणे संसारमग्गं वोच्छिंदइ, सिद्धि मग्गं पडिवन्ने य हवई।

अन्वयार्थ– भंते!– भगवन्! **निव्वेएणं–** निर्वेद से, **जीवे–** जीव, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त करता है?

निव्वेएणं– निर्वेद से, (जीव), **दिव्व–माणुस–तेरिच्छिएसु–** देवता, मनुष्य और तिर्यंचसम्बन्धी, **कामभोगेसु–** कामभोगों में, **हव्वं–** शीघ्र ही, **निव्वेएणं–** निर्वेदभाव–वैराग्य को, **आगच्छइ–** प्राप्त करता है। (फिर वह) **सव्व–विसएसु–विरज्जमाणे–** सर्व विषयों से विरक्त हुआ वह, **आरंभ परिग्गह परिच्चायं–** आरम्भ का, परित्याग, **करेइ–** कर देता है। **आरम्भ परिग्गह परिच्चायं–** आरम्भ–परित्याग, **करेमाणे–** करता हुआ व्यक्ति, **संसारमग्गं–** संसार के मार्ग का, **वोच्छिदइ–** विच्छेद कर देता है, **य–** और; **सिद्धिमग्गं–** सिद्धि–मुक्ति मार्ग, **पडिवन्ने–** ग्रहण करने वाला, **हवई–** होता है।

तृतीय सूत्रः धर्मश्रद्धा-

मूल– (प्र.) धम्मसद्धाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) धम्म-सद्धाए णं सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ अगार-धम्मं च णं चयइ। अणगारिए णं जीवे सारीर-माणसाणं दुक्खाणं छेयण-भेयण संजोगाईणं वोच्छेयं करेइ, अव्वाबाहं च सुहं निव्वत्तेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **धम्मसद्धाए णं–** धर्मश्रद्धा से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** उपलब्धि होती है?

धम्मसद्धाए णं– धर्मश्रद्धा से, **सायासोक्खेसु–** साता–सुखों– साता वेदनीय–कर्मजन्य विषय–सुखों में, **रज्जमाणे–** अनुरक्ति, आसक्ति से साधक, **विरज्जइ–** विरक्त हो जाता है, **च–** और, **अगारधम्मं णं–** अगारधर्म=गृहस्थ सम्बन्धी धर्म=प्रवृत्ति का, **चयइ–** त्याग कर देता है। (फिर), **अणगारिए णं–** अनगार होकर, **जीवे–** जीव, **छेयण–भेयण–**छेदन–भेदन तथा, **संजोगाईणं–** संयोग आदि (क्रमशः), **सारीर माणसाणं दुक्खाणं–** शारीरिक और मानसिक दुःखों का, **वोच्छेयं–** विच्छेद, **करेइ–** कर डालता है, **च–** और (फिर), **अव्वाबाहं–** अव्याबाध–समस्त बाधा रहित, **सुहं–** सुख को, **निव्वत्तेइ–** निष्पन्न=प्राप्त करता है।

चतुर्थ सूत्र : गुरु साधर्मिक शुश्रूषा-

मूल- (प्र.) गुरु-साहम्मिय-सुस्सूसणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) गुरु-साहम्मिय-सुस्सूसणयाए णं विणय-पडिवत्तिं जणयइ। विणय-पडिवन्ने य णं जीवे अणच्चासायणसीले नेरइय- तिरिक्ख-जोणिय-मणुस्स-देव-दुग्गइओ निरुंभइ। वण्ण-संजलण-भत्ति-बहुमाणयाए मणुस्स-देव-सुग्गइयो निबंधइ, सिद्धिं सोग्गइं च विसोहेइ। पसत्थाइं च णं विणय-मूलाइं सव्वकज्जाइं साहेइ। अन्ने य बहवे जीवे विणइत्ता भवइ।

अन्वयार्थ- भंते!-भगवन्! **गुरू-साहम्मियसुस्सूसणया- एणं-** गुरु और साधर्मिकों की शुश्रूषा से, **जीवे-** जीव, **किं-** क्या (फल), **जणयइ-** प्राप्त करता है?

गुरु-साहम्मिय-सुस्सूसणयाएणं- गुरु और साधर्मिकों की शुश्रूषा से (जीव), **विणय-पडिवत्तिं-** विनय-प्रतिपत्ति को, **जणयइ-** प्राप्त होता है। **य-** और, **विणय-पडिवन्नेणं-** विनय- प्रतिपन्न, **जीवे-** जीव, **अणच्चासायणसीले-** आशातना-रहित स्वभाव वाला होकर, **नेरइय-तिरिक्ख- जोणिय-मणुस्स- देव-दुग्गइओ-** नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव सम्बन्धी दुर्गतियों का, **निरुंभइ-** निरोध करता है। **वण्ण-संजलण भत्ति-बहुमाणयाए-** वर्ण- श्लाघा, संज्वलन- गुणों का प्रकाशन, भक्ति और बहुमान से, **मणुस्स-देव-सुग्गइओ-** मनुष्य और देव सम्बन्धी सुगतियों का, **निबंधइ-** बन्ध करता है, **च-** और, **सोग्गइं-** श्रेष्ठ गतिरूप, **सिद्धिं-** सिद्धि की, **विसोहेइ-** विशुद्धि करता है। **च-** तथा, **पसत्थाइं-** प्रशस्त, **विणय-मूलाइं-** विनयमूलक, **सव्व-कज्जाइं-** सब कार्यों को, **साहेइ-** सिद्ध कर लेता है। **य-** और, **अन्ने-** अन्य, **बहवे जीवे-** बहुत-से जीवों को भी, **विणइत्ता-** विनय ग्रहण कराने वाला, **भवइ-** होता है।

पंचम सूत्र : आलोचना-

मूल- (प्र.) आलोयणाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) आलोयणाए णं माया-नियाण-मिच्छादंसण सल्लाणं मोक्खमग्ग-विग्घाणं अणंत-संसार-वद्धणाणं उद्धरणं करेइ। उज्जुभावं च जणयइ। उज्जुभाव-पडिवन्ने य णं जीवे अमाई इत्थीवेय-नपुंसगवेयं च न बंधइ। पुव्वबद्धं च णं निज्जरेइ।

अन्वयार्थ- भंते- हे भगवन्! **आलोयणाए णं-** आलोचना से, **जीवे-** जीव को, **किं-** क्या, **जणयइ-** (लाभ) प्राप्त होता है?

आलोयणाए णं- आलोचना से, (जीव) **मोक्ख- मग्गविग्घाणं-** मोक्ष-मार्ग में विघ्न डालने वाले, (और) **अणंत-संसार-वद्धणाणं-** अनंत संसार को बढ़ाने वाले, **माया-नियाण-मिच्छादंसण-सल्लाणं-** माया, निदान और मिथ्यादर्शनरूप शल्यों को, **उद्धरणं करेइ-** निकाल फेंकता है। **च-** और, **उज्जुभावं-** ऋजुभाव (सरलता) को, **जणयइ-** प्राप्त होता है, **य-** और, **उज्जुभाव-पडिवन्ने णं-** ऋजुभाव को प्राप्त, **जीवे-** जीव, **अमाई-** माया-रहित होता है। (अतः वह) **इत्थीवेय-नपुंसगवेयं-** स्त्रीवेद और नपुंसकवेद का, **न बंधइ-** बंध नहीं करता। **च-** और (यदि) **पुव्वबद्धं णं-** पूर्वबद्ध (हो तो उस) की, **निज्जरेइ-** निर्जरा करता है।

छठा सूत्रः निन्दना-

मूल- (प्र.) निंदणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) निंदणयाए णं पच्छाणुतावं जणयइ। पच्छाणुतावेणं विरज्जमाणे करणगुणसेढिं पडिवज्जइ। करण-गुण-सेढि पडिवन्ने य अणगारे मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **निंदणयाए णं–** निन्दना– आत्मनिन्दा से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है?

निंदणयाए णं– निन्दना से, **पच्छाणुतावं–** पश्चात्ताप; **जणयइ–** होता है, **पच्छाणुतावेणं–** पश्चात्ताप से, **विरज्जमाणे–** वैराग्युक्त होता हुआ (जीव), **करण–गुण–सेढिं–** करण–गुण–श्रेणि को, **पडिवज्जइ–** प्राप्त होता है, **य–** और, **करण–गुण–सेढि पडिवन्ने–** करण–गुण–श्रेणि को प्राप्त; **अणगारे –** अनगार, **मोहणिज्जं कम्मं–** मोहनीय कर्म को, **उग्घाएइ–** नष्ट कर देता है।

सातवाँ सूत्रः गर्हणा-

मूल- (प्र.) गरिहणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) गरिहणयाए णं अपुरक्कारं जणयइ। अपुरक्कारगए णं जीवे अप्पसत्थेहिंतो जोगेहिंतो नियत्तेइ, पसत्थे य पडिवज्जइ। पसत्थ-जोगपडिवन्ने य णं अणगारे अणंतघाइ-पज्जवे खवेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **गरिहणयाए णं–** गर्हणा से, **जीवे–** जीव, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त करता है?

गरिहणयाए णं– गर्हणा से, (जीव) **अपुरक्कारं–** अपुरस्कार (आत्मलघुता–आत्मविनम्रता अथवा गौरवहीनता) को, **जणयइ–** प्राप्त होता है। **अपुरक्कारगए णं–** अपुरस्कार को प्राप्त, **जीवे–** जीव, **अप्पसत्थेहिंतो जोगेहिंतो–** अप्रशस्त योगों से, **नियत्तेइ–** निवृत्त हो जाता है, **य–** और, **पसत्थे–** प्रशस्त योगों को, **पडिवज्जइ–** ग्रहण करता है। **य–** तथा, **पसत्थजोग–पडिवन्ने णं–** प्रशस्त योगों को प्राप्त, **अणगारे–** अनगार, **अणंत–घाइ–पज्जवे–** ज्ञान आदि गुणों का घात करने वाले ज्ञानावरण आदि घाती कर्मों की अनन्त पर्यायों का, **खवेइ–** क्षय कर डालता है।

आठवाँ सूत्रः सामायिक-

मूल- (प्र.) सामाइएणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) सामाइएणं सावज्जजोग-विरइं जणयइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **सामाइएणं–** सामायिक से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है? (जीव) **सामाइएणं–** सामायिक से, **सावज्ज–जोग–विरइं–** सावद्य योगों से विरति, **जणयइ–** प्राप्त कर लेता है।

नौवाँ सूत्रः चतुर्विंशतिस्तव-

मूल- (प्र.) चउव्वीसत्थएणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) चउव्वीसत्थएणं दंसण-विसोहिं जणयइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **चउव्वीसत्थएणं–** चतुर्विंशति–स्तव– चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति से, **जीवे–** जीव, **किं–** क्या (फल), **जणयइ–** प्राप्त करता है? **चउव्वीसत्थएणं–** चतुर्विंशति–स्तव से (जीव), **दंसण–विसोहिं–** दर्शन– सम्यक्त्व की विशुद्धि, **जणयइ–** प्राप्त करता है।

दसवाँ सूत्रः वन्दना–

मूल– (प्र.) वंदणएणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) वंदणएणं नीयागोयं कम्मं खवेइ, उच्चागोयं कम्मं निबंधइ। सोहग्गं च णं अप्पडिहयं आणाफलं निव्वत्तेइ। दाहिणभावं च जणयइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **वंदणएणं–** वन्दना से, **जीवे–** जीव, **किं–** किस फल को, **जणयइ–** प्राप्त होता है?

वंदणएणं– वन्दना से (जीव), **नीयागोयं कम्मं–** नीच गोत्रकर्म का, **खवेइ–** क्षय करता है, (और) **उच्चागोयं कम्मं–** उच्च गोत्रकर्म का, **बंधइ–** बन्ध करता है (फिर वह) **अप्पडिहयं णं–** अप्रतिहत, **सोहग्गं–** सौभाग्य, **च–** तथा, **आणाफलं–** आज्ञा का प्रतिफल, **निव्वत्तेइ–** प्राप्त करता है, **च णं–** तथा, **दाहिणभावं–** दाक्षिण्यभाव (लोकप्रियता) को, **जणयइ–** प्राप्त होता है।

ग्यारहवाँ सूत्रः प्रतिक्रमण–

मूल– (प्र.) पडिक्कमणेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) पडिक्कमणेणं वय-छिद्दाइं पिहेइ। पिहिय-वय-छिद्दे पुणजीवे निरुद्धासवे असबलचरित्ते, अट्ठसु पवयणमायासु उवउत्ते अपुहत्ते सुप्पणिहिए विहरइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **पडिक्कमणेणं–** प्रतिक्रमण से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या (फल), **जणयइ–** प्राप्त होता है?

पडिक्कमणेणं– प्रतिक्रमण से (जीव), **वयछिद्दाइं–** (स्वीकृत) व्रतों के छिद्रों को, **पिहेइ–** ढाँकता है, **पिहिय–वय– छिद्दे–** व्रत के छिद्रों को ढाँकने वाला, **जीवे–** जीव, **पुण–** पुनः, **निरुद्धासवे–** आश्रवों को रोक देता है, **असबल–चरित्ते–** चारित्र पर आये हुए धब्बे मिटा देता है, **अट्ठसु पवयण–मायासु–** अष्ट प्रवचन माताओं में (वह), **उवउत्ते–** उपयोगवान् (सावधान) (होता है) (फिर), **अपुहत्ते–** पृथक्त्व से रहित (और), **सुप्पणिहिए–** सम्यक् प्रकार से प्रणिहित–समाधियुक्त होकर (संयममार्ग में), **विहरइ–** विचरता है।

बारहवाँ सूत्रः कायोत्सर्ग–

मूल– (प्र.) काउस्सग्गेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) काउस्सग्गेणं तीय-पडुपन्नं पायच्छित्तं विसोहेइ। विसुद्धपायच्छित्ते य जीवे निव्वुय-हियए ओहरिय-भारोव्व भारवहे, पसत्थज्झाणोवगए सुहंसुहेण विहरइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **काउस्सग्गेणं–** कायोत्सर्ग से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या (लाभ), **जणयइ–** प्राप्त होता है?

काउस्सग्गेणं– कायोत्सर्ग से, **तीय–पडुप्पन्नं–** अतीत और वर्तमान के, **पायच्छित्तं–** प्रायश्चित्त योग्य (अतिचारों) का, **विसोहेइ–** विशोधन होता है, **य–** फिर, **विसुद्ध–पायच्छित्ते–** प्रायश्चित्त से विशुद्ध हुआ, **जीवे–** जीव, **ओहरिय–भारोव्व भारवहे–** भार को उतारने वाले भारवाहक की भाँति, **निव्वुय–हियए–** शान्त (चिन्तारहित) हृदय वाला हो जाता है (फिर), **पसत्थज्झाणोवगए–** प्रशस्त ध्यान में लीन होकर, **सुहंसुहेण–** सुखपूर्वक, **विहरइ–** विचरण करता है।

तेरहवाँ सूत्रः प्रत्याख्यान–

मूल– (प्र.) पच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) पच्चक्खाणेणं आसव-दाराइं निरुम्भइ। पच्चक्खाणेणं इच्छाणिरोहं जणयइ। इच्छाणिरोहं गए य णं जीवे सव्वदव्वेसु विणीयतण्हे सीइभूए विहरइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **पच्चक्खाणेणं–** प्रत्याख्यान से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है?

पच्चक्खाणेणं– प्रत्याख्यान से, **आसवदाराइं–** (कर्मबन्धन के हेतुभूत हिंसादि) आश्रव–द्वारों का, **निरुम्भइ–** निरोध होता है।

पच्चक्खाणेणं - प्रत्याख्यान से, **इच्छाणिरोहं**-इच्छाओं का निरोध, **जणयइ**-प्राप्त होता है। **इच्छाणिरोहणं**-इच्छाओं के निरोध से, **जीवे**-जीव, **सव्वदव्वेसु**-सभी पदार्थों में, **विणीयतण्हे**-तृष्णारहित, **सीइभूए**-शीतलीभूत होकर, **विहरइ**-विचरण करता है।

चौदहवाँ सूत्रः स्तव–स्तुति–मंगल पाठ–

मूल– (प्र.) थव-थुइ-मंगलेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) थव-थुइ-मंगलेणं नाण-दंसण-चरित्त-बोहिलाभं जणयइ।
नाण-दंसण-चरित्त-बोहिलाभ-संपन्ने य णं जीवे अंतकिरियं कप्प- विमाणोववत्तियं आराहणं आराहेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **थव–थुइ–मंगलेणं–** स्तव, स्तुति मंगल से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है?

थव–थुइ–मंगलेणं– स्तव–स्तुति–मंगल से, (जीव को) **नाण–दंसण–चरित्तबोहिलाभं–** ज्ञान–दर्शन–चारित्र रूप बोधिलाभ, **जणयइ–** प्राप्त होता है। **य–** और, **नाण–दंसण–चरित्त– बोहिलाभ–सम्पन्ने–** ज्ञान–दर्शन–चारित्ररूप बोधिलाभ से सम्पन्न, **जीवे णं–** जीव, **अंतकिरियं–** अन्तक्रिया (मुक्ति) के योग्य, (अथवा) **कप्प विमाणोववत्तियं–** कल्पों (वैमानिक देवों) में उत्पन्न होने योग्य, **आराहणं आराहेइ–** आराधना करता है।

पन्द्रहवाँ सूत्रः काल–प्रतिलेखना–

मूल– (प्र.) काल-पडिलेहणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) काल-पडिलेहणयाए णं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **काल–पडिलेहणयाए–** काल–प्रतिलेखना से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, (फल) **जणयइ–** प्राप्त होता है?

काल–पडिलेहणयाए णं– काल की प्रतिलेखना से, **नाणावरणिज्जं–** ज्ञानावरणीय, **कम्मं–** कर्म का, **खवेइ–** क्षय करता है।

सोलहवाँ सूत्रः प्रायश्चित्तकरण–

मूल– (प्र.) पायच्छित्त-करणेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) पायच्छित्त-करणेणं पावकम्म-विसोहिं जणयइ, निरइयारे यावि भवइ। सम्मं च णं पायच्छित्तं पडिवज्जमाणे मग्गं च मग्गफलं च विसोहेइ, आयारं च आयार-फलं च आराहेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **पायच्छित्त–करणेणं–** प्रायश्चित्त करने से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जयणइ–** प्राप्त होता है?

पायच्छित्त–करणेणं– प्रायश्चित्त करने से, (जीव) **पावकम्म–विसोहिं–** पापकर्म की विशुद्धि, **जणयइ–** करता है, (फिर वह) **निरइयारे–** निरतिचार, **यावि–** भी, **भवइ–** हो जाता है, **च–** तथा, **सम्मं–** सम्यक् प्रकार से, **पायच्छित्तं णं–** प्रायश्चित्त को, **पडिवज्जमाणे–** स्वीकार करता हुआ, (साधक), **मग्गं–** मार्ग, **च–** और, **मग्गफलं च–** मार्ग–फल को, **विसोहेइ–** विशुद्ध करता है, **च–** तथा, **आयारं–** आचार, **च–** और, **आयारफलं–** आचार फल की, **आराहेइ–** आराधना कर लेता है।

सतरहवाँ सूत्रः क्षमापना–

मूल– (प्र.) खमावणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) खमावणयाए णं पल्हायणभावं जणयइ। पल्हायण भाव-मुवगए य सव्व-पाण-भूय-जीव-सत्तेसु मित्तीभावमुप्पाएइ। मित्ती भावमुवगए यावि जीवे भावविसोहिं काऊण निब्भए भवइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **खमावणयाए णं–** क्षमापना से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है?

खमावणयाए णं– क्षमापना से, (जीव को) **पल्हायणभावं–** प्रह्लाद–भावना–चित्त की प्रसन्नता, **जणयइ–** प्राप्त होती है, **पल्हायणभावमुवगए–** प्रह्लाद भाव को प्राप्त (जीव), **सव्वपाण–भूय– जीव–सत्तेसु–** सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों में, **मित्तीभावं–** मैत्रीभाव, **उप्पाएइ–** उत्पन्न करता है, **मित्तीभावमुवगए–** मैत्रीभाव को प्राप्त, **जीवे–** जीव, **भाव–विसोहिं–** भाव विशुद्धि, **काऊण–** करके, **निब्भए यावि–** निर्भय भी, **भवइ–** हो जाता है।

अठारह से चौबीसवाँ सूत्रः स्वाध्याय और उसके भेद–

मूल– (प्र.) सज्झाएणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) सज्झाएणं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ।।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **सज्झाएणं–** स्वाध्याय से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** लाभ होता है? **सज्झाएणं–** स्वाध्याय से, **नाणावरणिज्जं–** ज्ञानावरणीय, **कम्मं–** कर्म का, **खवेइ–** क्षय करता है।

मूल– (प्र.) वायणाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) वायणाए णं निज्जरं जणयइ। सुयस्स य अणुसज्जणाए अणासायणाए वट्टए। सुयस्स अणुसज्जणाए अणासायणाए वट्टमाणे तित्थ धम्मं अवलंबइ। तित्थधम्मं अवलंबमाणे महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **वायणाए णं–** वाचना से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है? **वायणाए णं–** वाचना से, (जीव) **निज्जरं–** कर्मों की निर्जरा, **जणयइ–** करता है, **सुयस्स–** श्रुत की, **य–** और, **अणुसज्जणाए–** अनुवर्तन से, **अणासायणाए–** अनाशातना में, **वट्टए–** प्रवृत्त होता है, **सुयस्स–** श्रुत की; **अणुसज्जणाए–** अनुवर्तन (एवं), **अणासायणाए–** अनाशातना में, **वट्टमाणे–** प्रवर्त्तमान (जीव), **तित्थधम्मं–** तीर्थ–धर्म का, **अवलंबमाणे–** अवलम्बन लेता है, **तित्थधम्मं–** तीर्थ–धर्म का, **अवलम्बमाणे–** अवलम्बन लेता हुआ (साधक), **महानिज्जरे–** (कर्मों की) महानिर्जरा वाला (और), **महापज्जवसाणे–** महापर्यवसान (कर्मों का सर्वथा अन्त करने) वाला, **भवइ–** होता है।

मूल– (प्र.) पडिपुच्छणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) पडिपुच्छणयाए णं सुत्तऽत्थ-तदुभयाइं विसोहेइ। कंखामोहणिज्जं कम्मं वोछिंदइ।।21।।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **पडिपुच्छणयाए णं–** प्रतिपृच्छना से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है? **पडिपुच्छणाए णं–** प्रतिपृच्छना से, **सुत्तऽत्थ–तदुभयाइं–** सूत्र, अर्थ और तदुभय (दोनों के तात्पर्य) को, **विसोहेइ–** विशुद्ध कर लेता है (और) **कंखा–मोहणिज्जं कम्मं–** कांक्षामोहनीय कर्म को, **वोछिंदइ–** विच्छिन्न कर देता है।

मूल– (प्र.) परियट्टणाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) परियट्टणाए णं वंजणाइं जणयइ, वंजणलद्धिं च उप्पाएइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **परियट्टणाए णं–** परिवर्त्तना से, **जीवे–** जीव, **किं–** किस (गुण) को, **जणयइ–** प्राप्त करता है?, **परियट्टणाए णं–** परिवर्त्तना से, **वंजणाइं–** व्यंजनों की, **जणयइ–** प्राप्ति होती है, **वंजण–लद्धिं–** व्यंजन–लब्धि को, **च–** तथा पदानुसारिणी लब्धि को, **उप्पाएइ–** प्राप्त कर लेता है।

मूल– (प्र.) अणुप्पेहाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) अणुप्पेहाए णं आउय-वज्जाओ सत्तकम्मप्पगडीओ घणिय-बंधण-बद्धाओ सिढिलबंधणबद्धाओ पकरेइ। दीह- कालट्ठिइयाओ हस्सकालट्ठिइयाओ पकरेइ। तिव्वाणुभावाओ मंदाणुभावाओ पकरेइ। बहुपएसग्गाओ अप्पपएसग्गाओ पकरेइ। आउयं च णं कम्मं सिया बंधइ, सिया नो बंधइ। असायावेयणिज्जं च णं कम्मं नो भुज्जो भुज्जो उवचिणाइ। अणाइयं च अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसार कंतारं खिप्पामेव वीइवयइ।

अन्वयार्थ– अणुप्पेहाए णं– अनुप्रेक्षा से, **भंते–** भगवन्! **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** उपलब्धि होती है? **अणुप्पेहाए णं–** अनुप्रेक्षा से, **आउयवज्जाओ–** आयुष्य कर्म को छोड़कर, **घणिय–बंधण–बद्धाओ–** गाढ़ बंधनों से बद्ध, **सत्तकम्मप्पगडीओ–** सात कर्म प्रकृतियों को, **सिढिल–बंधण–बद्धाओ–** शिथिल बंधनों से बद्ध, **पकरेइ–** कर लेता है, **दीहकाल–ट्ठिइयाओ–** दीर्घकाल की स्थिति वाली (कर्म प्रकृतियों) को, **हस्सकालट्ठिइयाओ–** ह्रस्वकाल (कम समय) की स्थिति वाली, **पकरेइ–** कर लेता है, **तिव्वाणुभावाओ–** तीव्र अनुभाव (रस) वाली (कर्म प्रकृतियों को), **मंदाणुभावाओ–** मन्द अनुभाव वाली, **पकरेइ–** कर लेता है, **बहुप्पएसग्गाओ–** बहुप्रदेश वाली (कर्म प्रकृतियों) को, **अप्पप्पएसग्गाओ–** अल्पप्रदेश वाली, **पकरेइ–** बना लेता है, **आउयं कम्मं–** आयुष्य कर्म को, **सिया बंधइ–** कदाचित् बांधता है, **सिया नो बंधइ–** कदाचित् नहीं बांधता, **असायावेयणिज्जं कम्मं–** असातावेदनीय कर्म का, **भुज्जो–भुज्जो–** बार–बार, **नो उवचिणाइ–** उपचय नहीं करता, **च–** अन्य (कर्मों की अशुभ प्रकृतियों को) भी, **अणाइयं–** अनादि, **अणवदग्गं–**

अनन्त, **दीहमद्धं–** दीर्घ मार्ग वाले, **चाउरंतं–** चार गतिरूप, **संसार–कंतारं–** संसार कांतार–जंगल को, **खिप्पामेव–** शीघ्र ही, **वीइवयइ–** व्यतिक्रम (पार) कर लेता है।

मूल– (प्र.) धम्मकहाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) धम्मकहाए णं निज्जरं जणयइ। धम्मकहाए णं पवयणं पभावेइ। पवयण-पभावेणं जीवे आगमिसस्स भद्दत्ताए कम्मं निबंधइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **धम्मकहाए णं–** धर्मकथा से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है? **धम्मकहाए णं–** धर्मकथा से, **निज्जरं–** कर्म–निर्जरा, **जणयइ–** करता है। **धम्मकहाए णं–** धर्मकथा से, **पवयणं–** प्रवचन की, **पभावेइ–** प्रभावना करता है, **पवयण–पभावेणं–** प्रवचन की प्रभावना से, **आगमेसस्स भद्दत्ताए–** आगामी काल की भद्रता के लिए (भविष्य में शुभ फल देने वाले) **कम्मं–** कर्मों का, **निबंधइ–** बंध करता है।

मूल– (प्र.) सुयस्स आराहणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) सुयस्स आराहणयाए णं अन्नाणं खवेइ, न य संकिलिस्सइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **सुयस्स–** श्रुत (सूत्र–सिद्धांत) की, **आराहणाए णं–** आराधना से, **जीवे–** जीव, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त करता है?, **सुयस्स आराहणाए णं–** श्रुत की आराधना से, (जीव), **अन्नाणं–** अज्ञान का, **खवेइ–** क्षय करता है, **य–** और, **न संकिलिस्सइ–** संक्लेश नहीं पाता।

पच्चीसवाँ सूत्रः एकाग्रमन-सन्निवेश-

मूल– (प्र.) एगग्ग-मण-संनिवेसणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) एगग्ग-मण-संनिवेसणयाए णं चित्त-निरोहं करेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **एगग्ग–मण–संनिवेसण–याए णं–** मन को एकाग्रता में स्थापित करने से, **जीवे–** जीव, **किं–** क्या, **जणयइ–** उपलब्ध करता है? **एगग्ग–मण–संनिवेसणयाए णं–** मन को एकाग्रता में स्थापित करने से, **चित्त–निरोहं–** चित्त (वृत्ति) निरोध, **करेइ–** कर लेता है।

अध्यात्म सूत्र 26 से 28ः संयम, तप और व्यवदान-

मूल– (प्र.) संजमेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) संजमेणं अणण्हयत्तं जणयइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **संजमेणं–** संयम से, **जीवे–** जीव, **किं–** क्या, **जणयइ–** उपार्जन करता है? **संजमेणं–** संयम से, **अणण्हयत्तं–** अनाश्रवपन (आते हुए कर्मों के निरोध) को, **जणयइ–** प्राप्त करता है।

मूल– (प्र.) तवेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) तवेणं वोदाणं जणयइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **तवेणं–** तप से, **जीवे–** जीव, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त करता है? **तवेणं–** तप से जीव, **वोदाणं–** व्यवदान (विशुद्धि) को, **जणयइ–** प्राप्त करता है।

मूल- (प्र.) वोदाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) वोदाणेणं अकिरियं जणयइ। अकिरियाए भवित्ता तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वाएइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेइ।

अन्वयार्थ- भंते- भगवन्! **वोदाणेणं-** व्यवदान (विशुद्धि) से, **जीवे-** जीव, **किं-** किस गुण को, **जणयइ-** प्राप्त करता है? **वोदाणेणं-** व्यवदान से (जीव), **अकिरियं-** अक्रियता- क्रियारहितता, **जणयइ-** प्राप्त करता है। **अकिरियाए-** अक्रिया से युक्त, **भवित्ता-** होकर, **तओ पच्छा-** तत्पश्चात् (व्यक्ति), **सिज्झइ-** सिद्ध हो जाता है, **बुज्झइ-** बुद्ध हो जाता है, **मुच्चइ-** मुक्त हो जाता है, **परिनिव्वायइ-** परिनिर्वाण-परमशान्ति को प्राप्त होता है, (और) **सव्वदुक्खाणमंतं-** सभी दु:खों का अन्त, **करेइ-** कर देता है।

अध्यात्म सूत्र 29: सुख-शात-

मूल- (प्र.) सुह-साएणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) सुह-साएणं अणुस्सुयत्तं जणयइ। अणुस्सुयाए णं जीवे अणुकंपए, अणुब्भडे विगयसोगे, चरित्त-मोहणिज्जं कम्मं खवेइ।

अन्वयार्थ- भंते- भगवन्! **सुह-साएणं-** सुख शात से, **जीवे-** जीव को, **किं-** क्या, **जणयइ-** प्राप्त होता है? **सुह साएणं-** सुख के शात (परित्याग) से, **अणुस्सुयत्तं-** (विषयों के प्रति) अनुत्सुकता, **जणयइ-** उत्पन्न होती है, **अणुस्सुयाए णं-** विषयों के प्रति अनुत्सुकता से, **जीवे-** जीव, **अणुकंपए-** अनुकम्पा करने वाला, **अणुब्भडे-** उद्धतता अर्थात् अहंकार से रहित, **विगयसोये-** विगतशोक- शोकरहित (होकर) **चरित्त-मोहणिज्जं कम्मं-** चारित्र-मोहनीय कर्म का, **खवेइ-** क्षय कर डालता है।

अध्यात्म सूत्र 30: अप्रतिबद्धता-

मूल- (प्र.) अप्पडिबद्धयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) अप्पडिबद्धयाए णं निस्संगत्तं जणयइ। निस्संगत्तेणं जीवे एगे, एगग्गचित्ते दिया वा राओ वा असज्जमाणे अप्पडिबद्धे यावि विहरइ।

अन्वयार्थ- भंते- भगवन्! **अप्पडिबद्धयाए णं-** अप्रतिबद्धता से, **जीवे-** जीव को, **किं-** क्या, **जणयइ-** प्राप्त होता है? **अप्पडिबद्धयाए णं-** अप्रतिबद्धता से (जीव), **निस्संगत्तं-** नि:संगता को, **जणयइ-** प्राप्त करता है। **निस्संगत्तेणं-** नि:संगता से, **जीवे-** जीव, **एगे-** एकाकी (अकेला-आत्मनिष्ठ) (और) **एगग्गचित्ते-** एकाग्रचित्त हो जाता है। **दिया वा राओ वा-** तथा दिन और रात, (वह) (सदैव सर्वत्र) **असज्जमाणे-** अनासक्त, **अप्पडिबद्धे यावि-** एवं अप्रतिबद्ध अर्थात् ममत्वविहीन होकर, **विहरइ-** विचरण करता है।

अध्यात्म सूत्र 31: विविक्त शय्यासन-

मूल- (प्र.) विवित्त-सयणासणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) विवित्त-सयणासणयाए णं चरित्त-गुत्तिं जणयइ। चरित्त गुत्ते य णं जीवे विवित्ताहारे दढचरित्ते एगंतरए मोक्खभाव-पडिवन्ने य अट्ठविह कम्मगंठिं निज्जरेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **विवित्त–सयणासणयाए णं–** विविक्त शयनासन के सेवन से, **जीवे–** जीव, **किं–** किस गुण को, **जणयइ–** प्राप्त करता है? **विवित्त–सयणासणयाए णं–** विविक्त शयनासन के सेवन से, (जीव को) **चरित्तगुत्तिं–** चारित्र–गुप्ति– चारित्र– रक्षा, **जणयइ–** उपलब्ध होती है। **य–** और, **चरित्तगुत्तेणं–** चारित्र–गोपक– (रक्षक), **जीवे–** जीव, **विवित्ताहारे–** शुद्ध, सात्त्विक, विकृतिरहित एवं पवित्र आहारी, **दढ–चरित्ते–** दृढ़–चारित्री, **एगंतरए–** एकान्त–रत (एकान्तप्रिय), **य**–और, **मोक्खभाव–पडिवन्ने–** मोक्षभाव से सम्पन्न (होकर), **अट्ठविह–कम्मगंठिं–** आठ प्रकार की कर्म ग्रन्थियों की, **निज्जरेइ–** निर्जरा कर लेता है।

अध्यात्म सूत्र 32: विनिवर्तना-

मूल- (प्र.) विणियट्टणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) विणियट्टणयाए णं पावकम्माणं अकरणयाए अब्भुट्ठेइ। पुव्वबद्धाण य निज्जरणयाए तं नियत्तेइ। तओ पच्छा चाउरंतं संसार-कंतारं वीइवयइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **विणियट्टणयाए णं–** विनिवर्तना (आत्मा का विषयों से विमुख होना) से, **जीवे–** जीव, **किं–** किस गुण को, **जणयइ–** प्राप्त करता है? **विणियट्टणयाए णं–** विनिवर्तना से, (जीव) **पावकम्माणं** (नये) पापकर्मों को, **अकरणयाए–** न करने के लिए, **अब्भुट्ठेइ–** उद्यत रहता है। **य–** और, **पुव्वबद्धाण–** पूर्वबद्ध पापकर्मों की, **निज्जरणयाए–** निर्जरा से, (वह), **तं नियत्तेइ–** उसको क्षय कर उनसे निवृत्ति पा लेता है। **तवो पच्छा–** तत्पश्चात्, **चाउरंतं–** चतुर्गतिक, **संसार–कंतारं–** संसाररूपी अरण्य (वन) को, **वीइवयइ–** अतिक्रमण कर (लाँघ) जाता है।

अध्यात्म सूत्र 33 से 41: प्रत्याख्यान की नवसूत्री-

मूल- (प्र.) संभोग-पच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) संभोग-पच्चक्खाणेणं आलंबणाइं खवेइ। निरालंबणस्स य आययट्ठिया जोगा भवंति। सएण लाभेणं संतुस्सइ, परलाभं नो आसाएइ, नो तक्केइ, नो पीहेइ, नो पत्थेइ, नो अभिलसइ। परलाभं अणासायमाणे, अतक्केमाणे, अपीहेमाणे, अपत्थेमाणे, अणभिलसमाणे, दुच्चं सुहसेज्जं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **संभोग–पच्चक्खाणेणं–** सम्भोग के प्रत्याख्यान से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है?

संभोग–पच्चक्खाणेणं– संभोग (साधु–साध्वियों के परस्पर आहार, वन्दन व्यवहार, धर्मोपदेश आदि करना) के प्रत्याख्यान से (साधक), **आलंबणाइं–** आलम्बनों (परालम्बनों) को, **खवेइ–** समाप्त कर देता है, **य–** और, **निरालंबणस्स–** निरालम्बी (स्वावलम्बी साधक) के, **जोगा–** मन–वचन–काया–योग, **आययट्ठिया–** आयतार्थ– मोक्षार्थ, **भवंति–** हो जाते हैं (फिर वह) **सएणं लाभेण–** स्वयं के द्वारा अर्जित लाभ से, **संतुस्सइ–** सन्तुष्ट रहता है, **परलाभ–** पर (दूसरों) के लाभ का, **नो आसाएइ–** आस्वादन (उपभोग) नहीं करता, **नो तक्केइ–** (परलाभ को) ताकता भी नहीं, कल्पना भी नहीं करता; **नो पीहेइ–** न (उसकी) स्पृहा करता है, **नो पत्थेइ–** न प्रार्थना (याचना) करता है (और); **नो अभिलसइ–** न ही अभिलाषा करता है, **परलाभं–** दूसरों के लाभ का, **अणस्साएमाणे–** आस्वादन न करता हुआ, **अतक्केमाणे–** कल्पना भी न करता हुआ, **अपीहेमाणे–** स्पृहा न करता हुआ, **अपत्थेमाणे–** प्रार्थना न करता हुआ (और); **अणभिलसमाणे–** अभिलाषा न

करता हुआ (साधक), **दुच्चं–** दूसरी, **सुहसेज्जं–** सुखशय्या को, **उवसंपज्जित्ताणं–** प्राप्त करके, **विहरइ–** विचरता है।

मूल– (प्र.) उवहि-पच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) उवहि-पच्चक्खाणेणं अपलिमंथं जणयइ। निरुवहिएणं जीवे निक्कंखी, उवहिमंतरेण य न संकिलिस्सइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **उवहि–पच्चक्खाणेणं–** उपधि (उपकरण) के प्रत्याख्यान से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** उपलब्ध होता है?

उवहि–पच्चक्खाणेणं– उपधि के प्रत्याख्यान से, **अपलिमंथं जणयइ–** अपरिमन्थ (स्वाध्याय–ध्यान में निर्विघ्नता) प्राप्त कर लेता है। **निरुवहिएणं–** उपधि–रहित, **जीवे–** जीव, **निक्कंखी–** आकांक्षा से मुक्त होकर, **उवहिमंतरेण–** उपधि के बिना, **य–** फिर, **न संकिलिस्सइ–** संक्लेश नहीं पाता।

मूल– (प्र.) आहार-पच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) आहार-पच्चक्खाणेणं जीवियासंसप्पओगं वोच्छिंदइ। जीविया-संसप्पओगं वोच्छिंदित्ता जीवे आहारमंतरेणं न संकिलिस्सइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **आहार–पच्चक्खाणेणं–** आहार के प्रत्याख्यान से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** उपलब्ध होता है?

आहार–पच्चक्खाणेणं– आहार के प्रत्याख्यान से, **जीवियासंसप्पओगं–** जीवित रहने की आशंसा (लालसा) के प्रयत्न को, **वोच्छिंदइ–** विच्छिन्न कर देता है। **जीवियासंसप्पओगं–** जीने की लालसा को, **वोच्छिंदित्ता–** तोड़ (छोड़) देने से, **जीवे–** जीव, **आहार–मंतरेणं–** आहार के अभाव में, **न संकिलिस्सइ–** संक्लेश नहीं करता।

मूल– (प्र.) कसाय-पच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) कसाय-पच्चक्खाणेणं वीयराग भावं जणयइ। वीयराग- भाव पडिवन्ने वि य णं जीवे समसुह-दुक्खे भवइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **कसाय–पच्चक्खाणेणं–** कषाय के प्रत्याख्यान से, **जीवे–** जीव को, **किं–** किस गुण की, **जणयइ–** प्राप्ति होती है?

कसाय–पच्चक्खाणेणं– कषाय के प्रत्याख्यान से (साधक), **वीयराग–भावं–** वीतराग भाव को, **जणयइ–** प्राप्त करता है, **य–** और, **वीयराग–भाव–पडिवन्ने–** वीतराग भाव को प्राप्त, **जीवे–** जीव, **सम–सुह–दुक्खे वि णं–** सुख और दु:ख में भी समभावी, **भवइ–** हो जाता है।

मूल– (प्र.) जोग-पच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) जोग-पच्चक्खाणेणं अजोगत्तं जणयइ। अजोगी णं जीवे नवं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **जोग–पच्चक्खाणेणं–** योगों के प्रत्याख्यान से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** उपलब्ध होता है?

जोग–पच्चक्खाणेणं– योगों के प्रत्याख्यान से (जीव), **अजोगत्तं–** अयोगित्व–अयोगी भाव को, **जणयइ–** प्राप्त करता है, **अजोगी जीवे–** योगरहित जीव, **नवं कम्मं–** नए कर्म को, **न बंधइ–** नहीं बांधता है, **पुव्वबद्धं च–** और पहले के बंधे हुए कर्म की, **निज्जरेइ–** निर्जरा (क्षय) कर देता है।

मूल– (प्र.) सरीर-पच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) सरीर-पच्चक्खाणेणं सिद्धाइसय-गुणकित्तणं निव्वत्तेइ। सिद्धाइसय-गुण संपन्ने य णं जीवे लोगग्गमुवगए परमसुही भवइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **सरीर–पच्चक्खाणेणं–** शरीर के प्रत्याख्यान से, **जीवे–** जीव, **किं जणयइ–** किस गुण को प्राप्त करता है?

सरीर–पच्चक्खाणेणं– शरीर–प्रत्याख्यान से, **सिद्धाइसय– गुणकित्तणं–** सिद्धों के अतिशय गुणत्व का, **निव्वत्तेइ–** सम्पादन कर लेता है, **य–** और, **सिद्धाइसय–गुण–संपन्ने णं–** सिद्धों के अतिशय गुणों से सम्पन्न, **जीवे–** जीव, **लोगग्गमुवगए–** लोक के अग्रभाग में पहुँच कर, **परमसुही–** परमसुखी, **भवइ–** हो जाता है।

मूल– (प्र.) सहाय-पच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) सहाय-पच्चक्खाणेणं एगीभावं जणयइ। एगीभावभूए वि य णं जीवे एगग्गं भावेमाणे अप्पसद्दे, अप्पझंझे, अप्पकलहे, अप्पकसाए, अप्प-तुमंतुमे, संजम-बहुले, संवर-बहुले, समाहिए यावि भवइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **सहाय–पच्चक्खाणेणं–** सहाय (सहायक) के प्रत्याख्यान से, **जीवे–** जीव, **किं–** किस गुण को, **जणयइ–** प्राप्त करता है?

सहाय–पच्चक्खाणेणं– सहाय के त्याग से (जीव) **एगीभावं–** एकीभाव को, **जणयइ–** प्राप्त होता है। **य–** और, **एगीभावभूए–** एकीभाव को प्राप्त, **जीवे–** जीव, **एगत्तं–** एकत्व की, **भावेमाणे–** भावना करता हुआ, **अप्पसद्दे–** अल्प शब्द वाला, **अप्पझंझे–** वाक्कलह से रहित, **अप्पकलहे–** अल्पकलह (झगड़े–टंटे रहित) वाला, **अप्पकसाए–** अल्प कषाय वाला, **अप्प–तुमंतुमे–** अल्प तू–तू–मैं–मैं वाला, (होकर) **संजम बहुले–** प्रधान संयमवान्, **संवरबहुले–** संवर प्रधान, **च–** और, **समाहिए यावि–** समाधियुक्त भी, **भवइ–** होता है।

मूल– (प्र.) भत्त-पच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) भत्त-पच्चक्खाणेणं अणेगाइं भवसयाइं निरुंभइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **भत्त–पच्चक्खाणेणं–** भक्त (भोजन) के प्रत्याख्यान से, **जीवे–** जीव, **किं जणयइ–** क्या प्राप्त करता है?

भत्त–पच्चक्खाणेणं– भक्त (आहार) के त्याग से (जीव) **अणेगाइं–** अनेक, **भव–सयाइं–** सैकड़ों भवों को, **निरुंभइ–** रोक देता है।

मूल– (प्र.) सब्भाव-पच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) सब्भाव-पच्चक्खाणेणं अनियट्टिं जणयइ। अनियट्टि- पडिवन्ने य अणगारे चत्तारि केवलिकम्मंसे खवेइ। तं जहा-वेयणिज्जं, आउयं, नामं, गोयं। तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वाएइ, सव्व-दुक्खाणमंतं करेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **सब्भाव–पच्चक्खाणेणं–** सद्भाव प्रत्याख्यान से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है?

सब्भाव–पच्चक्खाणेणं– सद्भाव प्रत्याख्यान से, **अनियट्टि–** अनिवृत्ति रूप शुक्लध्यान के चतुर्थ भेद की, **जणयइ–** प्राप्ति होती है, **य–** और, **अनियट्टि पडिवन्ने–** अनिवृत्ति से सम्पन्न, **अणगारे–** अनगार, **चत्तारि केवलि–कम्मंसे–** केवली के चार शेष रहे हुए कर्मो का, **खवेइ–** क्षय कर डालता है, **तं जहा–** वे चार कर्म इस प्रकार हैं, **वेयणिज्जं–** वेदनीय, **आउयं–** आयुष्य, **नामं–** नाम और **गोयं–** गोत्र, **तओ पच्छा–** तत्पश्चात् (वह) **सिज्झइ–** सिद्ध होता है, **बुज्झइ–** बुद्ध होता है, **मुच्चइ–** मुक्त होता है, **परिनिव्वाएइ–** परिनिर्वाण को प्राप्त होता है (और) **सव्वदुक्खाणं–** समस्त दुःखों का, **अंतंकरेइ–** अन्त कर देता है।

अध्यात्म सूत्र 42: प्रतिरूपता-

मूल- (प्र.) पडिरूवयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) पडिरूवयाए णं लाघवियं जणयइ। लहुभूए णं जीवे अप्पमत्ते, पागडलिंगे, पसत्थ-लिंगे, विसुद्ध-सम्मत्ते, सत्त-समिइ- समत्ते, सव्व-पाण-भूय-जीव-सत्तेसु वीससणिज्ज-रूवे, अप्पपडिलेहे, जिइंदिए, विउल-तव-समिइ-समन्नागए यावि भवइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **पडिरूवयाए णं–** प्रतिरूपता से, **जीवे–** जीव, **किं–** किस गुण को, **जणयइ–** प्राप्त करता है?

पडिरूवयाए णं– प्रतिरूपता (द्रव्य और भाव में समानता) से, (साधक) **लाघवियं–** लघुता (हल्कापन), **जणयइ–** प्राप्त करता है। **लहुभूए णं–** लघुभाव को प्राप्त, **जीवे–** जीव, **अप्पमत्ते–** प्रमादरहित, **पागडलिंगे–** प्रकट लिंग (वेष) वाला, **पसत्थ–लिंगे–** प्रशस्त लिंग वाला, **विसुद्ध–सम्मत्ते–** विशुद्ध–सम्यक्त्वी, **सत्त–समिई–समत्ते–** सत्त्व और समिति से परिपूर्ण, **सव्व–पाण–भूय–जीव सत्तेसु–** समस्त प्राणी, भूत, जीव और सत्त्वों के लिए, **वीससणिज्ज–रूवे–** विश्वसनीय रूप वाला, **अप्पपडिलेहे–** अल्प प्रतिलेखन वाला, **जिइंदिए–** जितेन्द्रिय, **विउल–तव– समिइ–समन्नागए यावि–** और विपुल तप एवं समिति से समन्वित भी, **भवइ–** हो जाता है।

अध्यात्म सूत्र 43: वैयावृत्त्य-

मूल- (प्र.) वेयावच्चेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) वेयावच्चेणं तित्थयर-नाम-गोत्तं कम्मं निबन्धइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **वेयावच्चेणं–** वैयावृत्त्य से, **जीवे–** जीव, **किं–** क्या, **जणयइ–** उपार्जन करता है?

वेयावच्चेणं– वैयावृत्त्य से, **तित्थयर–नाम–गोत्तं–कम्मं–** तीर्थंकर– नाम–गोत्र का, **निबंधइ–** बन्ध करता है।

अध्यात्म सूत्र 44: सर्व गुण सम्पन्नता-

मूल- (प्र.) सव्व-गुण-सम्पन्नयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) सव्व-गुण-संपन्नयाए णं अपुणरावित्तिं जणयइ। अपुणरावित्तिं पत्तए य णं जीवे सारीर-माणसाणं दुक्खाणं नो भागी भवइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **सव्व–गुण–संपन्नयाए णं–** सर्व–गुण–सम्पन्नता से, **जीवे–** जीव, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त करता है?

सव्व–गुण–सम्पन्नयाए णं– सर्व–गुण–सम्पन्नता से, (साधक) **अपुणरावित्तिं–** पुनः (संसार में) आगमन के अभाव– मोक्ष को, **जणयइ–** प्राप्त करता है। **य–** और, **अपुणरावित्तिं पत्तए–** अपुनरावृत्ति को प्राप्त, **जीवे–** जीव, **सारीर माणसाणं–** शारीरिक और मानसिक, **दुक्खाणं–** दुःखों का, **भागी–** भागी–भोगने वाला, **नो भवइ–** नहीं होता।

अध्यात्म सूत्र 45: वीतरागता-

मूल– (प्र.) वीयरागयाएणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) वीयरागयाए णं नेहाणुबन्धणाणि, तण्हाणुबन्धणाणि य वोच्छिंदइ मणुन्नामणुन्नेसु सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधेसु सचित्ताचित्त मीसएसु चेव विरज्जइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **वीयरागयाए णं–** वीतरागता से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है? **वीयरागयाए णं–** वीतरागता से, **नेहाणुबंधणाणि–** स्नेहानुबन्धनों, **य–** और, **तण्हाणुबंधणाणि–** तृष्णानुबन्धनों का, **वोच्छिंदइ–** विच्छेद हो जाता है। फिर वह, **मणुन्नामणुन्नेसु–** मनोज्ञ और अमनोज्ञ, **सद्द–फरिस–रस–रूवगंधेसु–** शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध से, **चेव–** तथा, **सचित्ताचित्त–मीसएसु–** सचित्त, अचित्त और मिश्रद्रव्यों से, **विरज्जइ–** विरक्त (रागद्वेष–मुक्त) हो जाता है।

अध्यात्म सूत्र 46 से 49: क्षान्ति, मुक्ति, आर्जव और मार्दव-

मूल– (प्र.) खंतीए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) खंतीएणं परीसहे जिणइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **खंतीए णं–** क्षान्ति से, **जीवे–** जीव, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त करता है? **खंतीए णं–** क्षान्ति–सहिष्णुता से, **परीसहे–** परीषहों को, **जिणइ–** जीत लेता है।

मूल– (प्र.) मुत्तीए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) मुत्तीए णं अकिंचणं जणयइ। अकिंचणे य जीवे अत्थलोलाणं पुरिसाणं अपत्थणिज्जे भवइ।

अन्वयार्थ– भंते– हे भगवन्! **मुत्तीए णं–** मुक्ति– निर्लोभता से, **जीवे–** जीव, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त करता है? **मुत्तीए णं–** निर्लोभता से, **अकिंचणं–** अकिंचनता, **जणयइ–** प्राप्त करता है। **य–** और, **अकिंचणे जीवे–** अकिंचन जीव, **अत्थलोलाणं पुरिसाणं–** अर्थलोलुपी पुरुषों द्वारा, **अपत्थणिज्जे–** अप्रार्थनीय, **भवइ–** होता है।

मूल– (प्र.) अज्जवयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) अज्जवयाए णं काउज्जुययं, भावुज्जुययं, भासुज्जुययं अविसंवायणं जणयइ। अविसंवायण-संपन्नयाए णं जीवे धम्मस्स आराहए भवइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **अज्जवयाए णं–** ऋजुता (सरलता) से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है? **अज्जवयाए णं–** ऋजुता से (जीव) **काउज्जुययं–** काया की सरलता, **भावुज्जुययं–** भावों

की सरलता, **भासुज्जुययं–** भाषा की सरलता (और), **अविसंवायणं–** अविसंवादिता को, **जणयइ–** प्राप्त करता है। (तथा) **अविसंयायण संपन्नयाए णं–** अविसंवाद सम्पन्नता से, **जीवे–** जीव, **धम्मस्स–** धर्म का, **आराहए–** आराधक, **भवइ–** होता है।

मूल– (प्र.) मद्दवयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) मद्दवयाए णं अणुस्सियत्तं जणयइ। अणुस्सियत्ते णं जीवे मिउ-मद्दव-संपन्ने अट्ठ-मयट्ठाणाइं निट्ठावेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **मद्दवयाए णं–** मृदुता से, **जीवे–** जीव, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त करता है? **मद्दवयाए णं–** मृदुता से, **अणुस्सियत्तं–** अनुद्धत भाव (निरभिमानता) को, **जणयइ–** प्राप्त होता है, **अणुस्सियत्ते णं–** अनुद्धतभाव से, **जीवे–** जीव, **मिउ–मद्दव–सम्पन्ने–** मृदु और मार्दव भाव से सम्पन्न होकर, **अट्ठ–मयट्ठाणाइं–** आठ मदस्थानों को, **निट्ठावेइ–** विनष्ट कर देता है।

अध्यात्म सूत्र 50 से 52: सत्य-त्रिवेणी-

मूल– (प्र.) भावसच्चे णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) भावसच्चे णं भाव-विसोहिं जणयइ। भावविसोहीए वट्टमाणे जीवे अरिहंत-पन्नत्तस्स आराहणयाए अब्भुट्ठेइ। अरिहंत- पन्नत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठित्ता परलोगधम्मस्स आराहए हवइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **भावसच्चेणं–** भाव–सत्य से, **जीवे–** जीव को, **किं–** किस गुण की, **जणयइ–** प्राप्ति होती है? **भावसच्चेणं–** भाव–सत्य से जीव, **भाव विसोहि–** भाव–विशुद्धि, **जणयइ–** प्राप्त करता है, **भाव–विसोहीए–** भावविशुद्धि में, **वट्टमाणे–** प्रवर्तमान, **जीवे–** जीव, **अरिहंतपन्नत्तस्स–** अर्हत् प्रज्ञप्त, **धम्मस्स–** धर्म की, **आराहणयाए–** आराधना के लिए, **अब्भुट्ठेइ–** उद्यत होता है? **अरिहंत–पन्नतस्स–** अर्हत् प्रज्ञप्त धर्म की, **आराहणाए–** आराधना के लिये, **अब्भुट्ठित्ता–** उद्यत व्यक्ति, **परलोग–धम्मस्स–** परलोक धर्म का, **आराहए–** आराधक, **हवइ–** होता है।

मूल– (प्र.) करणसच्चेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) करण-सच्चेणं करणसत्तिं जणयइ। करणसच्चे वट्टमाणे जहावाई तहाकारी यावि भवइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **करणसच्चेणं–** करण–सत्य से, **जीवे–** जीव, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त करता है?

करणसच्चेणं– करण–सत्य से जीव, **करणसत्तिं–** करण–शक्ति को, **जणयइ–** प्राप्त करता है। **करणसच्चे–** करण–सत्य में, **वट्टमाणे–** प्रवर्तमान, **जीवे–** जीव, **जहावाई– तहाकारी–** यथावादी तथाकारी (जैसा कहता है, वैसा करने वाला) **यावि–** भी, **भवइ–** होता है।

मूल– (प्र.) जोग-सच्चेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) जोगसच्चेणं जोगं विसोहेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **जोग–सच्चेणं–** योग–सत्य से, **जीवे–** जीव, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त करता है? **जोगसच्चेणं–** योग–सत्य से, **जोगं–** योगों को, **विसोहेइ–** विशुद्ध कर लेता है।

अध्यात्म सूत्र 53 से 55: त्रिगुप्ति–साधना–

मूल– (प्र.) मणगुत्तयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) मणगुत्तयाए णं जीवे एगग्गं जणयइ। एगग्ग-चित्तेणं जीवे मणगुत्ते संजमाराहए भवइ।

अन्वयार्थ– भंते– हे पूज्य! **मणगुत्तयाए णं–** मनोगुप्तता (मनोगुप्ति) से, **जीवे–** जीव, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त करता है?

मणगुत्तयाए णं– मनोगुप्ति से, **जीवे–** जीव, **एगग्गं–** (मन की) एकाग्रता, **जणयइ–** प्राप्त करता है, **एगग्ग–चित्ते णं–** एकाग्र चित्तवाला, **जीवे–** जीव, **मणगुत्ते–** (अशुभ विकल्पों से) मन का रक्षक (होकर), **संजमाराहए–** संयम का आराधक होता है।

मूल– (प्र.) वयणगुत्तयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) वयणगुत्तयाए णं निव्वियारत्तं जणयइ। निव्वियारे णं जीवे वइगुत्ते अज्झप्प-जोग-साहणजुत्ते यावि भवइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **वयण–गुत्तयाए णं–** वचन–गुप्ति से, **जीवे–** जीव, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त करता है?

वयणगुत्तयाए णं– वचनगुप्ति से (जीव), **निव्वियारत्तं–** निर्विकारता (या निर्विचार भाव) को, **जणयइ–** प्राप्त करता है, **निव्वियारे णं जीवे–** निर्विकार (या निर्विचार) जीव, **वइगुत्ते–** (सर्वथा) वचन से गुप्त (मौन) होकर, **अज्झप्प–जोग–साहण– जुत्तो–** अध्यात्मयोग के साधनों से युक्त, **यावि–** भी, **भवइ–** हो जाता है।

मूल– (प्र.) काय-गुत्तयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) काय-गुत्तयाए णं संवरं जणयइ। संवरेणं कायगुत्ते पुणो पावासव-निरोहं करेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **कायगुत्तयाए णं–** कायगुप्ति से, **जीवे–** जीव, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त करता है?

काय–गुत्तयाए णं– कायगुप्ति से, (जीव) **संवरं–** संवर (आश्रव–निरोधरूप) को, **जणयइ–** प्राप्त होता है। **संवरेण–** संवर के द्वारा, **कायगुत्ते–** कायगुप्त (होकर साधक), **पुणो–** फिर से (होने वाले) **पावासव–निरोहं–** पापाश्रव का निरोध, **करेइ–** कर लेता है।

अध्यात्म सूत्र 56 से 58: समाधारणता की त्रिवेणी–

मूल– (प्र.) मणसमाहरणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) मणसमाहरणयाए णं एगग्गं जणयइ। एगग्गं जणइत्ता नाणपज्जवे जणयइ। नाण-पज्जवे जणइत्ता सम्मत्तं विसोहेइ, मिच्छत्तं च निज्जरेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **मणसमाहरणयाए णं–** मन:समाधारणता से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है? **मणसमाहरणयाए णं–** मन की समाधारणता से, (जीव), **एगग्गं–** एकाग्रता, **जणयइ–** प्राप्त करता है, **एगग्गं–** एकाग्रता, **जणइत्ता–** प्राप्त करके, **नाण–पज्जवे–** ज्ञान–पर्यवों को, **जणयइ–** प्राप्त करता है, **नाण–पज्जवे–** ज्ञान–पर्यवों को, **जणइत्ता–** प्राप्त करके, (वह) **सम्मत्तं–** सम्यक्त्व को, **विसोहेइ–** विशुद्ध करता है, **च–** और, **मिच्छत्तं–** मिथ्यात्व की, **निज्जरेइ–** निर्जरा करता है।

मूल- (प्र.) वय समाहरणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) वय-समाहरणयाए णं वय-साहारण-दंसण-पज्जवे विसोहेइ। वय-साहारण-दंसण-पज्जवे विसोहेत्ता सुलह-बोहियत्तं निव्वत्तेइ, दुल्लह-बोहियत्तं निज्जरेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **वयसमाहरणयाए णं–** वचन–समाधारणता से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है? **वयसमाहरणयाए णं–** वचन की समाधारणता से (जीव), **वय–साहारण–दंसण–पज्जवे–** साधारण वाणी के (कथनयोग्य पदार्थ विषयक) विषयभूत, दर्शन के पर्यायों को, **विसोहेइ–** विशुद्ध करता है, **वय–साहारण–दंसण–पज्जवे–** वाणी के विषयभूत दर्शन के पर्यायों को, **विसोहेत्ता–** विशुद्ध करके (वह) **सुलहबोहियत्तं–** सुलभ–बोधिता को, **निव्वत्तेइ–** प्राप्त करता है (और) **दुल्लहबोहियत्तं–** दुर्लभ–बोधिता की, **निज्जरेइ–** निर्जरा करता है।

मूल- (प्र.) काय-समाहरणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) काय-समाहरणयाए णं चरित्त-पज्जवे विसोहेइ। चरित्त-पज्जवे विसोहित्ता अहक्खाय-चरित्तं विसोहेइ। अहक्खाय -चरित्तं विसोहित्ता चत्तारि केवलिकम्मं से खवेइ। तओ-पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वाएइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ।

अन्वयार्थ– भंते– पूज्य! **काय–समाहरणयाए णं–** काय समाधारणता से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है?

काय–समाहरणयाए णं– काय–समाधारणता से, **चरित्त पज्जवे–** चारित्र के पर्यायों को, **विसोहेइ–** विशुद्ध करता है, **चरित्त पज्जवे–** चारित्र पर्यायों को, **विसोहित्ता–** विशुद्ध करके (वह) **अहक्खाय चरित्तं–** यथाख्यात चारित्र की, **विसोहित्ता–** विशुद्धि करके, **से–** वह, **चत्तारि केवलि कम्मं–** केवली में विद्यमान चार (वेदनीयादि अघाती) कर्मों का, **खवेइ–** क्षय करता है, **तओ पच्छा–** तदनन्तर (वह) **सिज्झइ–** सिद्ध होता है, **बुज्झइ–** बुद्ध होता है, **मुच्चइ–** मुक्त हो जाता है, **परिनिव्वाएइ–** परिनिर्वाण को प्राप्त होता है, (और) **सव्वदुक्खाणं अन्तं करेइ–** समस्त दु:खों का अन्त कर देता है।

अध्यात्म सूत्र 59 से 61: रत्नत्रय–सम्पन्नता–

मूल- (प्र.) नाण-सम्पन्नयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) नाण-सम्पन्नयाए णं जीवे सव्वभावाहिगमं जणयइ। नाण-सम्पन्ने णं जीवे चाउरंते संसार-कंतारे न विणस्सइ।

जहा सूई ससुत्ता, पडिया वि न विणस्सइ।
तहा जीवे ससुत्ते, संसारे न विणस्सइ॥

नाण-विणय-तव-चरित्त-जोगे संपाउणइ, ससमयपरसमय विसारए य असंघायणिज्जे भवइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **नाण–संपन्नयाए णं–** ज्ञान– सम्पन्नता से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है?

नाण–संपन्नयाए णं– ज्ञान–सम्पन्नता से, **जीव–** जीवे, **सव्वभावाहिगमं–** सर्वभावों का अधिगम–बोध, **जणयइ–** प्राप्त करता है। **नाण–संपन्नेणं–** ज्ञान–सम्पन्नता से, **जीवे–** जीव, **चाउरंते–** चतुर्गतिक, **संसार–कंतारे–** संसाररूपी कान्तार– महारण्य में, **न विणस्सइ–** विनष्ट नहीं होता– रुलता नहीं।

जहा– जिस प्रकार, **ससुत्ता–** सूत्र (धागे) सहित, **सूई–** सूई, **पडिया वि–** (कहीं) गिर जाने पर भी, **न विणस्सइ–** विनष्ट नहीं होती– खो नहीं जाती, **तहा–** उसी प्रकार, **ससूत्ते–** ससूत्र (शास्त्रज्ञान–सहित) **जीवे–** जीव, **संसारे–** संसार में, **न विणस्सइ–** विनष्ट नहीं होता।

(फिर वह) **नाण–विणय–तव–चरित्त–जोगे–** ज्ञान, विनय, तप और चारित्र के योगों को, **संपाउणइ–** सम्प्राप्त करता है, **य–** तथा, **ससमय–परसमय–विसारए–** स्वसिद्धान्त और परसिद्धान्त में विशारद (होकर), **असंघायणिज्जे–** प्रामाणिक पुरुष, **भवइ–** हो जाता है।

मूल– (प्र.) दंसण-संपन्नयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) दंसण-संपन्नयाए णं भव-मिच्छत्त-छेयणं करेइ। परं न विज्झायइ। परं अविज्झाएमाणे अणुत्तरेणं नाण-दंसणेणं अप्पाणं संजोएमाणे, सम्मं भावेमाणे विहरइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **दंसण–संपन्नयाए णं–** दर्शन–सम्पन्नता से, **जीवे–** जीव, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त करता है?

दंसण–संपन्नयाए णं– दर्शन–सम्पन्नता से, (जीव) **भव–मिच्छत्त–छेयणं–** संसार के हेतुभूत मिथ्यात्व का छेदन, **करेइ–** करता है। **परं–** उत्तरकाल में, **न विज्झायइ–** (सम्यक्त्व का प्रकाश) बुझता नहीं है। (फिर वह) **अणुत्तरेणं–** अनुत्तर (श्रेष्ठ), **नाण–दंसणेण–** ज्ञान–दर्शन से, **अप्पाणं–** आत्मा को, **संजोएमाणे–** संयोजित करता (जोड़ता हुआ), (तथा) **सम्मं–** सम्यक् प्रकार से, **भावेमाणे–** भावित करता हुआ, **विहरइ–** विचरण करता है।

मूल– (प्र.) चरित्त-संपन्नयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) चरित्त-संपन्नयाए णं सेलेसीभावं जणयइ। सेलेसिं पडिवन्ने य अणगारे चत्तारि केवलि-कम्मंसे खवेइ। तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वाएइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **चरित्त–संपन्नयाए णं–** चारित्र–सम्पन्नता से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है?

चरित्त संपन्नयाए णं– चारित्र–सम्पन्नता से, **सेलेसी भावं–** शैलेशी भाव को, **जणयइ–** प्राप्त कर लेता है। **य–** और, **सेलेसिं पडिवन्ने–** शैलेशीभाव को प्राप्त, **अणगारे–** अनगार, **चत्तारि–** चार, **केवलि–कम्मंसे–** केवली में शेष रहने वाले अघाती कर्मांशों का, **खवेइ–** क्षय कर डालता है। **तओ पच्छा–** उसके पश्चात् (वह) **सिज्झइ–** सिद्ध होता है, **बुज्झइ–** बुद्ध होता है, **मुच्चइ–** मुक्त होता है, **परिनिव्वाएइ–** परिनिर्वाण को प्राप्त होता है, (और) **सव्व दुक्खाणं–** सर्व दु:खों का, **अन्तंकरेइ–** अन्त कर देता है।

अध्यात्म सूत्र 62 से 66: पंचेन्द्रिय निग्रह की पंचसूत्री–

मूल– (प्र.) सोइंदिय-निग्गहेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) सोइंदिय-निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु सद्देसु राग-दोस- निग्गहं जणयइ। तप्पच्चइयं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **सोइंदिय–निग्गहेणं–** श्रोत्रेन्द्रिय के निग्रह से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है? **सोइंदिय–निग्गहेणं–** श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह से, **मणुन्नामणुन्नेसु सद्देसु–** मनोज्ञ कर्णप्रिय और अनमोज्ञ कर्णकटु शब्दों पर, **राग–दोस–निग्गहं–** राग–द्वेष का निग्रह, **जणयइ–** हो जाता है, (फिर वह)

तप्पच्चइयं– तन्निमित्तक, **कम्मं–** कर्म, **न बंधइ–** नहीं बांधता, **च–** और, (यदि) **पुव्वबद्धं–** पहले बंधा हुआ हो तो (उसकी), **निज्जरेइ–** निर्जरा कर देता है।

मूल– (प्र.) चक्खिंदिय-निग्गहेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) चक्खिंदिय-निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु रूवेसु रागदोस- निग्गहं जणयइ। तप्पच्चइयं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **चक्खिंदिय–निग्गहेणं–** चक्षुइन्द्रिय के निग्रह से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है?

चक्खिंदिय–निग्गहेणं– चक्षुरेन्द्रिय के निग्रह से, **मणुन्नामणुन्नेसु रूवेसु–** मनोज्ञ और अमनोज्ञ रूपों पर होने वाले, **राग–दोस निग्गहं–** राग–द्वेष का निग्रह, **जणयइ–** हो जाता है। (फिर वह), **तप्पच्चइयं–** तन्निमित्तक, **कम्मं–** कर्म, **न बंधइ–** नहीं बांधता, **च–** और, **पुव्वबद्धं–** पहले बंधे हुए पूर्वसंचित कर्म की, **निज्जरेइ–** निर्जरा कर देता है।

मूल– (प्र.) घाणिंदिय-निग्गहेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) घाणिंदिय-निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु रसेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ। तप्पच्चइयं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **घाणिंदिय–निग्गहेणं–** घ्राणेन्द्रिय के निग्रह से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है?

घाणिंदिय निग्गहेणं– घ्राणेन्द्रिय निग्रह से, **मणुन्नामणुन्नेसु गंधेसु–** मनोज्ञ और अमनोज्ञ गन्धों पर, **रागदोसनिग्गहं–** राग–द्वेष का निग्रह, **जणयइ–** कर लेता है, (फिर वह) **तप्पच्चइयं–** तन्निमित्तक, **कम्मं–** कर्म, **न बंधइ–** नहीं बांधता, **य–** और, **पुव्वबद्धं–** पहले बंधे हुए कर्म की, **निज्जरेइ–** निर्जरा कर लेता है।

मूल– (प्र.) जिब्भिंदिय निग्गहेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) जिब्भिंदिय-निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु रसेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ। तप्पच्चइयं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **जिब्भिंदियनिग्गहेणं–** रसनेन्द्रिय के निग्रह से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है?

जिब्भिंदियनिग्गहेणं– रसनेन्द्रिय के निग्रह से, **मणुन्नामणुन्नेसु रसेसु–** मनोज्ञ और अमनोज्ञ रसों पर, **राग–दोस–निग्गहं–** राग–द्वेष का निग्रह, **जणयइ–** कर लेता है, **तप्पच्चइयं–** फिर वह तन्निमित्तक, **कम्मं–** कर्म, **न बंधइ–** नहीं बांधता, **च–** और, **पुव्वबद्धं–** पूर्वबद्ध कर्म की, **निज्जरेइ–** निर्जरा कर लेता है।

मूल– (प्र.) फासिंदिय-निग्गहेणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) फासिंदिय-निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु फासेसु राग-दोस- निग्गहं जणयइ। तप्पच्चइयं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **फासिंदिय–निग्गहेणं–** स्पर्शनेन्द्रिय के निग्रह से, **जीवे–** जीव, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त करता है? **फासिंदिय–निग्गहेणं–** स्पर्शनेन्द्रिय के निग्रह से, **मणुन्नामणुन्नेसु फासेसु–** मनोज्ञ और

अमनोज्ञ स्पर्शों पर, (होने वाले), **राग दोस निग्गहं–** राग–द्वेष का निग्रह, **जणयइ–** करता है। **तप्पच्चइयं–** (फिर वह) तन्निमित्तक, **कम्मं न बंधइ–** कर्म नहीं बांधता। **पुव्वद्धं च–** और पूर्वबद्ध कर्म का, **निज्जरेइ–** क्षय कर देता है।

अध्यात्म सूत्र 67 से 70: कषाय विजय की चतुःसूत्री–

मूल– (प्र.) कोह-विजएणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) कोह-विजएणं खंतिं जणयइ। कोहवेयणिज्जं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **कोह–विजएणं–** क्रोध पर विजय प्राप्त करने से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है? **कोह–विजएणं–** क्रोध पर विजय पाने से, (जीव), **खंतिं–** क्षमाभाव को, **जणयइ–** प्राप्त करता है। (फिर वह) **कोह–वेयणिज्जं–** क्रोध–वेदनीय, **कम्मं–** कर्म का, **न बंधइ–** बन्ध नहीं करता। **च–** और, **पुव्वबद्धं–** पहले बन्धे हुए इस कर्म की, **निज्जरेइ–** निर्जरा कर लेता है।

मूल– (प्र.) माण-विजएणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) माण-विजएणं मद्दवं जणयइ। माण-वेयणिज्जं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **माण–विजएणं–** मान–विजय से, **जीवे–** जीव, **किं–** किस गुण को, **जणयइ–** प्राप्त करता है?

माणं–विजएणं– मान–विजय से, (जीव को) **मद्दवं–** मृदुता, **जणयइ–** प्राप्त होती है। (फिर वह) **माण–वेयणिज्जं कम्मं–** मान–वेदनीय कर्म का, **न बंधइ–** बन्ध नहीं करता, **पुव्वबद्धं–** पहले बंधे हुए (इस कर्म), की **निज्जरेइ–** निर्जरा कर लेता है।

मूल– (प्र.) माया-विजएणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) माया-विजएणं अज्जवं जणयइ। माया-वेयणिज्जं कम्मं न बंधइ। पुव्वबद्धं च निज्जरेइ।

अन्वयार्थ– माया–विजएणं– माया पर विजय से, **भंते–** भगवन्! **जीवे–** जीव– **किं–** किस गुण को, **जणयइ–** प्राप्त करता है? **माया–विजएणं–** माया पर विजय पाने से, (जीव) **अज्जवं–** आर्जव– सरलता को, **जणयइ–** प्राप्त करता है। (फिर वह) **माया–वेयणिज्जं–** माया–वेदनीय, **कम्मं–** कर्म, **न बंधइ–** नहीं बांधता। **च–** और **पुव्वबद्धं–** पहले बंधा हुआ हो तो, (उसकी), **निज्जरेइ–** निर्जरा कर लेता है।

मूल– (प्र.) लोभ-विजएणं भंते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) लोभ-विजएणं संतोसं जणयइ। लोभवेयणिज्जं कम्मं न बंधइ। पुव्वबद्धं च निज्जरेइ।

अन्वयार्थ– भंते– भगवन्! **लोभ–विजएणं–** लोभ पर विजय पाने से, **जीवे–** जीव को, **किं–** क्या, **जणयइ–** प्राप्त होता है?

लोभ–विजएणं– लोभ–विजय से, (जीव को) **संतोसं–** संतोष–गुण, **जणयइ–** प्राप्त होता है। (फिर वह) **लोभ–वेयणिज्जं कम्मं–** लोभ–वेदनीय कर्म को, **न बंधइ–** नहीं बांधता। **च–** और, **पुव्वबद्धं–** पहले बंधे हुए (इस कर्म) की **निज्जरेइ–** निर्जरा करता है।

अध्यात्म सूत्र 71: प्रेय-द्वेष-मिथ्यादर्शन-विजय-

मूल- (प्र.) पिज्ज-दोस-मिच्छादंसण-विजएणं भन्ते! जीवे किं जणयइ?

(उ.) पिज्ज-दोस-मिच्छादंसण-विजएणं नाण-दंसण- चरित्ताराहणाए अब्भुट्ठेइ। अट्ठविहस्स कम्मस्स कम्मगंठि- विमोयणयाए तप्पढमयाए जहाणुपुव्वीए अट्ठावीसइ-विहं मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ; पंचविहं नाणावरणिज्जं, नवविहं दंसणावरणिज्जं, पंचविहं अंतराइयं- एए तिन्नि वि कम्मंसे जुगवं खवेइ। तओ पच्छा अणुत्तरं अणंतं, कसिणं, पडिपुण्णं, निरावरणं, वितिमिरं, विसुद्धं लोगालोगप्पभावगं केवल-वरनाण-दंसणं समुप्पाडेइ। जाव सजोगी भवइ, ताव इरियावहियं कम्मं निबंधइ। सुह-फरिसं, दु-समय ठिइयं। तं जहा-पढम-समए बद्धं, बिइय-समए वेइयं, तइय समए निज्जिण्णं। तं बद्धं, पुट्ठं, उदीरियं, वेइयं, निज्जिण्णं, सेयाले य अकम्मं यावि भवइ।

अन्वयार्थ- भंते- भगवन्! **पिज्ज-दोस-मिच्छादंसण- विजएणं-** प्रेय (राग), द्वेष और मिथ्यादर्शन पर विजय से, **जीवे-** जीव को, **किं-** क्या **जणयइ-** प्राप्त होता है? **पिज्ज-दोस-मिच्छादंसण- विजएणं-** प्रेय (राग) द्वेष, और मिथ्यादर्शन पर विजय से, (जीव) **नाण-दंसण-चरित्ताराहणाए-** ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना के लिए, **अब्भुट्ठेइ-** उद्यत होता है। (फिर वह) **अट्ठविहस्स कम्मस्स-** (आठ प्रकार के कर्मों की, **कम्मगंठि-विमोयणाए-** कर्मग्रन्थि को (विमोचन) खोलने के लिए, **तप्पढमयाए-** उनमें से सर्वप्रथम, **जहाणुपुव्वीए-** अनुक्रम से, **अट्ठावीसइविहं-** अट्ठाइस प्रकार के, **मोहणिज्जं कम्मं-** मोहनीय कर्म का, **उग्घाएइ-** घात (क्षय) करता है (तथा) **पंचविहं-** पाँच प्रकार के, **नाणावरणिज्जं-** ज्ञानावरणीय कर्म का, **नवविहं दंसणावरणिज्जं-** नौ प्रकार के दर्शनावरणीय कर्म का, (एवं) **पंचविहं अंतराइयं-** पाँच प्रकार के अन्तराय कर्म का, **ए ए तिन्नि वि कम्मंसे-** इन तीनों कर्मों के अंश का, **जुगवं-** युगपत्-एक साथ, **खवेइ-** क्षय कर डालता है। **तओ पच्छा-** तत्पश्चात्, **अणुत्तरं-** प्रधान, **अणंतं-** अनन्त, **कसिणं-** सम्पूर्ण, **पडिपुण्णं-** परिपूर्ण, **निरावरणं-** आवरण-रहित, **वितिमिरं-** अन्धकार-रहित, **विसुद्धं-** विशुद्ध, **लोगालोगप्पभावगं-** लोक और अलोक का प्रकाशक, **केवल-** सहायरहित, **वरनाण-दंसणं-** श्रेष्ठ ज्ञान और दर्शन को, **समुप्पाडेइ-** प्राप्त कर लेता है।

जाव- जब तक (वह), **सजोगी-** सयोगी, **भवइ-** रहता है, **ताव-** तब तक, **इरियावहियं-** ईर्यापथिक, **कम्मं-** कर्म-क्रिया का, **निबंधइ-** बंध करता है। (परन्तु उसका) **सुहफरिसं-** स्पर्श सुखरूप होता है। **दुसमयठिइयं-** उसकी स्थिति दो समय की होती है, **तं जहा-** जैसे कि, **पढमसमए-** प्रथम समय में, **बद्धं-** बंध हुआ। **बिइय समये-** द्वितीय समय में, **वेइयं-** वेदन किया (और) **तइय-समए-** तीसरे समय में, **निज्जिण्णं-** निर्जरा हुई-फल देकर विनष्ट हुआ।

(इस प्रकार) **तं-** वह (क्रमशः), **बद्धं-** बद्ध होता है, **पुट्ठं-** स्पृष्ट होता है, **उदीरियं-** उदय में आता है, (फिर) **वेइयं-** वेदन किया (भोगा) जाता है, (और) **निज्जिण्णं-** निर्जरा को प्राप्त (क्षय) हो जाता है। **य-** फिर, **सेयाले-** आगामीकाल (अन्त) में, (वह) **च-** और चतुर्थ समय में, **अकम्मं यावि-** कर्मरहित भी, **भवइ-** हो जाता है।

अध्यात्म सूत्र 72 योग निरोध और शैलेशी अवस्था-

मूल- (उ.) अहाउयं पालइत्ता अंतोमुहुत्तद्धावसेसाउए जोग-निरोहं करेमाणे सुहुम-किरियं अप्पडिवाइ-सुक्कज्झाणं झियायमाणे, तप्पढमयाए मणजोगं निरुंभइ, मण जोगं निरुंभित्ता वइ जोगं निरुंभइ, वइ जोगं निरुंभित्ता कायजोगं निरुंभइ, काय जोगं णिरूंभित्ता आण-पाणु-निरोहं करेइ। करित्ता

ईसि पंच-हस्सक्खरुच्चारद्धाए य णं अणगारे समुच्छिन्नकिरियं अनियट्टि-सुक्कज्झाणं झियायमाणे वेयणिज्जं, आउयं, नामं, गोत्तं च एए चत्तारि कम्मंसे जुगवं खवेइ।

अन्वयार्थ– (भगवन्! केवलज्ञान–प्राप्ति के पश्चात् शैलेशी अवस्था कैसे प्राप्त होती है?)

अह– केवलज्ञान–प्राप्ति के पश्चात्, **आउयं–** शेष आयु कर्म को; **पालइत्ता–** भोगकर, **अंतोमुहुत्तद्धावसेसाउए–** जब अन्तर्मुहूर्त्तकाल परिमित आयु शेष रहती है, (तब अनगार), **जोगनिरोहं–** योग का निरोध, **करेमाणे–** करता हुआ, **सुहुम–किरियं अप्पडिवाइ–** सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती नामक, **सुक्कज्झाणं–** शुक्लध्यान को, **झियायमाणे–** ध्याता हुआ, **तप्पढमयाए–** सर्वप्रथम, **मणजोगं–** मनोयोग का, **निरुंभइ–** निरोध करता है। **मणजोगं**–मनोयोग का, **निरुंभित्ता–** निरोध करके, **वइजोगं–** वचनयोग का, **निरुंभइ–** निरोध करता है, **वइजोगं निरुंभित्ता–** वचनयोग का निरोध करके, **कायजोगं णिरुंभइ**–काय योग का निरोध करता है, **कायजोगं णिरुंभित्ता**– काय योग का निरोध करके, **आणपाणु–निरोहं–** आनापान–श्वासोच्छ्वास का निरोध, **करेइ–** करता है। **करित्ता–** श्वासोच्छ्वास का निरोध करके, **ईसि–** ईषत्– स्वल्प (मध्यमगति से), **पंचहस्सक्खरुच्चारणद्धाए–** पाँच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण जितने काल में, **समुच्छिन्नकिरियं अनियट्टि सुक्कज्झाणं–** समुच्छिन्नक्रियाऽनिवृत्ति नामक शुक्लध्यान को, **झियायमाणे–** ध्याता हुआ (वह) **अणगारे–** अनगार, **य–** फिर, **वेयणिज्जं–** वेदनीय, **आउयं–** आयु, **नामं–** नाम, **गोत्तं–** गोत्र, **एए–** इन, **चत्तारिकम्मंसे–** चार कर्मांशों का, **जुगवं–** एक ही साथ, **खवेइ–** क्षय कर देता है।

अध्यात्म सूत्र 73- अकर्मता-सिद्धावस्था-

मूल– तओ ओरालिय-तेय-कम्माइं च सव्वाहिं विप्पजहणाहिं विप्पजहित्ता उज्जुसेढिपत्ते अफुसमाणगइ उड्ढं एगसमएणं अविग्गहेणं तत्थ गंता सागारोवउत्ते सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वाएइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेइ।।

उपसंहार- एस खलु सम्मत्त-परक्कमस्स अज्झयणस्स अट्ठे समणेणं भगवया महावीरेणं आघविए, पन्नविए, परूविए, दंसिए, उवदंसिए। -त्ति
बेमि-

अन्वयार्थ– तओ– तदनन्तर, **ओरालिय–तेय–कम्माइं–** औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर को, **सव्वाहिं सव्वविप्पजहणाहिं–** त्याग से (सदा के लिए सर्वथा) **विप्पजहित्ता–** छोड़कर, **उज्जुसेढिपत्ते–** ऋजुश्रेणि को प्राप्त हुआ (और) **एगसमएणं–** एक समय में, **अफुसमाणगई–** अस्पृशद्गतिरूप (अन्य आकाश प्रदेशों का स्पर्श न करते हुए गति करना), **उड्ढं–** ऊँची, **अविग्गहेणं–** अविग्रह (बिना मोड़ वाली) गति से, **तत्थ–** वहाँ (लोकाग्र में), **गंता–** जाकर, **सागारोवउत्ते–** साकारोपयुक्त–अर्थात्– अपने शरीर को अवगाहना के 2/3 (दो तिहाई) परिमाण आकाश प्रदेशों में ज्ञानोपयोग से, **सिज्झइ–** सिद्ध होता है, **बुज्झइ–** बुद्ध होता है, **मुच्चइ–** मुक्त होता है, **परिनिव्वाएइ–** निर्वाण को प्राप्त होता है, **सव्वदुक्खाणमंतं–** सभी प्रकार के दुःखों का अन्त, **करेइ–** कर देता है।

एस– यह, **खलु–** निश्चयरूपेण, **सम्मत्तपरक्कमस्स–** सम्यक्त्व पराक्रम नामक, **अज्झयणस्स–** अध्ययन का, **अट्ठे–** अर्थ, **समणेणं–** श्रमण, **भगवया–** भगवान, **महावीरेणं–** महावीर ने, **आघविए–** आख्यायित–प्रतिपादित किया है, **पन्नविए–** प्रज्ञापित किया है, **परूविए–** प्ररूपित किया है, **दंसिए–** दिखलाया है, दृष्टान्तों के साथ वर्णित किया है, **उवदंसिए–** उपदेश दिया है। **त्ति बेमि–** ऐसा मैं कहता हूँ।

।। सम्यक्त्व पराक्रम नामक 29वाँ अध्ययन समाप्त ।।

तत्त्वार्थ सूत्र-

अध्याय - छठा

आश्रव तत्त्व-विचारणा

तत्त्वार्थ सूत्र जैन तत्त्व ज्ञान को सूत्रात्मक शैली में संगृहीत करने वाला विशिष्ट ग्रन्थ है। दार्शनिक जगत् में यह ग्रन्थ अपना विशिष्ट स्थान रखता है। यह ग्रंथ श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों सम्प्रदाय में मान्य है। दस अध्यायात्मक इस ग्रंथ के प्रथम अध्याय में सम्यग् दर्शन-ज्ञान का वर्णन किया गया, दूसरे से चौथे अध्याय तक प्रथम जीव तत्त्व का वर्णन किया गया और पाँचवें अध्याय में षट् द्रव्यों का वर्णन करने के पश्चात् प्रस्तुत अध्याय में आश्रव तत्त्व का वर्णन किया जा रहा है।

सूत्र- **काय-वाङ्-मनः-कर्मयोगः ।1।**

अर्थ- काय, वचन और मन की क्रिया या प्रवृत्ति योग है।

सूत्र- **स आश्रवः ।2।**

अर्थ- वह योग ही आश्रव है।

प्र.1 योग किसे कहते हैं?

उत्तर- काय, वचन और मन की प्रवृत्ति योग है।

प्र.2 आश्रव किसे कहते हैं?

उत्तर- मन, वचन और काय योग ही आश्रव है।

प्र.3 योग को आश्रव क्यों कहा गया है?

उत्तर- मन, वचन एवं काय की शुभाशुभ प्रवृत्ति के कारण ही कर्मबंध होता है और जिसके द्वारा कर्मबन्ध होता है वह आश्रव कहलाता है, अतः योग को ही आश्रव कहा गया है।

शुभः पुण्यस्य ।3।

अशुभः पापस्य ।4।

अर्थ- शुभ योग पुण्य का आश्रव है।
अशुभयोग पाप का आश्रव है।

प्र.4 कायादि तीन योगों के दो भेद कौन-कौनसे हैं?

उत्तर- शुभ योग एवं अशुभ योग।

प्र.5 योग के शुभत्व एवं अशुभत्व का आधार कया है?

उत्तर- योग के शुभत्व एवं अशुभत्व का आधार भावना है।

प्र.6 पुण्य का आश्रव किसे कहा गया है?

उत्तर- पुण्य का आश्रव शुभ योग को कहा गया है।

प्र.7 पाप का आश्रव किसे कहा गया है?

उत्तर– पाप का आश्रव अशुभयोग को कहा गया है।

सूत्र- कषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः।5।

अर्थ– कषाय सहित और कषाय रहित आत्मा का योग क्रमशः साम्परायिक एवं ईर्यापथ कर्म का आश्रव है। अर्थात् कषाय सहित आत्मा के कायादि योग साम्परायिक कर्म के आश्रव हैं, एवं कषाय रहित आत्मा के कायादि योग ईर्यापथ कर्म के आश्रव हैं।

प्र.8 आश्रव के दो भेद लिखिए।

उत्तर– (1) साम्परायिक आश्रव, (2) ईर्यापथ आश्रव।

प्र.9 साम्परायिक आश्रव किसे कहते हैं?

उत्तर– कषाय सहित आत्मा के योग को साम्परायिक आश्रव कहते हैं।

प्र.10 ईर्यापथ आश्रव किसे कहा गया है?

उत्तर– कषाय रहित आत्मा के योग को ईर्यापथ आश्रव कहा गया है।

प्र.11 सकषायी आत्माएँ कौन–कौनसी हैं?

उत्तर– पहले से दसवें गुणस्थानवर्ती आत्माएँ सकषायी हैं।

प्र.12 अकषायी आत्माएँ कौन–कौनसी हैं?

उत्तर– 11वें से 14वें गुणस्थानवर्ती आत्माएँ अकषायी हैं।

प्र.13 ईर्यापथकर्म एवं सम्परायकर्म में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– कषायोदय वाली आत्माएँ काययोग आदि तीन प्रकार के शुभाशुभ योग से जो कर्म बाँधती हैं, वे साम्परायिक कर्म कहलाते हैं। जबकि कषाय के अभाव में केवल गमनागमनादि क्रियाओं के द्वारा बाँधे जाने वाले कर्म ईर्यापथ कर्म कहलाते हैं।

प्र.14 ईर्यापथ एवं साम्परायिक कर्मों की स्थिति कितने काल की होती है?

उत्तर– यद्यपि तत्त्वार्थ सूत्रकार के अनुसार ईर्यापथकर्म की स्थिति एक समय की होती है, किन्तु उत्तराध्ययन सूत्र के 29वें अध्ययन की 72वीं पृच्छा में प्रथम समय में बन्ध, द्वितीय समय में वेदन तथा तृतीय समय में निर्जरा बतलाकर ईर्यापथिक की स्थिति दो समय की कही है। (प्रथम समय आस्रव के पश्चात् एक समय तत्त्वार्थ सूत्रकार की अपेक्षा) साम्परायिक कर्म की स्थिति कषायों की तीव्रता एवं मन्दता के आधार पर अधिक अथवा कम होती है। जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट 70 कोटाकोटि सागरोपम की होती है।

साम्परायिक कर्माश्रव के भेद

अव्रतकषायेन्द्रियक्रिया-पंच-चतुः-
पंच-पंच-विंशति-संख्या-पूर्वस्य भेदाः।6।

अर्थ– पूर्व के अर्थात् साम्परायिक कर्माश्रव के अव्रत, कषाय, इन्द्रिय और क्रिया रूप भेद हैं, जिनकी संख्या क्रमशः पाँच, चार, पाँच और पच्चीस है।

प्र.15 साम्परायिक कर्माश्रव किसे कहते हैं?

उत्तर– जिन हेतुओं से साम्परायिक कर्म का बंध होता है, उन्हें साम्परायिक कर्माश्रव कहते हैं।

प्र.16 साम्परायिक कर्माश्रव के भेदों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर– साम्परायिक कर्माश्रव के 39 भेद हैं–

1. पाँच अव्रत– हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह।
2. चार कषाय– क्रोध, मान, माया और लोभ।
3. पाँच इन्द्रियाँ– श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय।
4. 25 क्रियाएँ– यहाँ क्रियाओं के नाम तत्त्वार्थ सूत्र के अनुसार दिये जा रहे हैं। आगम और तत्त्वार्थ सूत्र में क्रियाओं के नाम व क्रम में अन्तर है। आगम के अनुसार सम्यक्त्व क्रिया नहीं, अपितु संवर है।

(1) **सम्यक्त्व क्रिया–** सम्यक्त्व का पोषण करने वाली क्रियाएँ। जैसे– देव–वन्दन, गुरुवन्दन, जप आदि प्रवृत्ति रूप होने से पुण्याश्रव होता है।

(2) **मिथ्यात्व क्रिया–** मिथ्यात्व को बढ़ाने वाली कुगुरु आदि की सेवा।

(3) **प्रयोग क्रिया–** गमनागमन आदि कषाय भावयुक्त शारीरिक क्रियाएँ।

(4) **समादान क्रिया–** त्याग–पथ अपनाने पर भी भोगों की ओर रुचि।

(5) **ईर्यापथिकी क्रिया–** कषाय विमुक्त वचन और कार्य की प्रवृत्ति।

(6) **कायिकी क्रिया–** दुष्टभाव युक्त शारीरिक प्रयास अथवा चेष्टा।

(7) **आधिकरणिकी क्रिया–** शस्त्रों आदि हिंसक साधनों को ग्रहण करना।

(8) **प्राद्वेषिकी क्रिया–** यह क्रिया क्रोध के आवेश में होती है।

(9) **पारितापनिकी क्रिया–** प्राणियों को परिताप–संताप देने वाली।

(10) **प्राणातिपातिकी क्रिया–** हिंसा अर्थात् प्राणियों के प्राणघात की क्रिया।

(11) **दर्शन क्रिया–** रागयुक्त होकर रमणीय दृश्यों को देखने का भाव।

(12) **स्पर्शन क्रिया–** स्पर्शन योग्य वस्तु को स्पर्श करने की अभिलाषा।

(13) **प्रात्ययिकी क्रिया–** प्राणिघात करने में सक्षम नये–नये उपकरणों के निर्माण अथवा उन्हें ग्रहण करने, खरीदने की चेष्टा अथवा प्रयास करना।

(14) **समंतानुपातन क्रिया–** जहाँ स्त्री–पुरुष उठते–बैठते हों अथवा उनका निर्बाध गमनानुगमन होता हो, वहाँ मल–मूत्र त्यागना।

(15) **अनाभोग क्रिया–** बिना देखी तथा बिना स्वच्छ (पूँजी) की गई भूमि पर शरीर आदि रखना।

(16) **स्वहस्त क्रिया–** जो क्रिया दूसरों के द्वारा की जाने योग्य हो, उसे स्वयं अपने हाथ से कर लेना।

(17) **निसर्ग क्रिया–** दूसरों को पाप प्रवृत्ति के लिए उत्साहित करना अथवा आलस्य के कारण स्वयं प्रशस्त क्रिया न करना।

(18) **विदारण क्रिया–** किसी के द्वारा आचरित पाप को प्रकट कर देना।

(19) **आनयन क्रिया–** आवश्यक आदि के विषय में अरिहंत भगवान की जैसी आज्ञा है, उससे अन्यथा निरुपण करना। सर्वार्थसिद्धिकार ने इसका नाम 'आज्ञाव्यापादनिक क्रिया' दिया है।

(20) **अनाकांक्षा क्रिया–** आलस्य तथा धूर्तता अथवा मूर्खता के कारण आगमोक्त विधि में अनादर करना।

(21) **आरम्भ क्रिया–** छेदन–भेदन आदि हिंसा जनित क्रियाओं में स्वयं रत रहना और दूसरों की ऐसी क्रियाओं को देखकर हर्षित होना।

(22) **परिग्रह क्रिया–** परिग्रह में ममत्वपूर्ण वृत्ति–प्रवृत्ति रखना। इसे विषय अथवा परिग्रह संरक्षिणी क्रिया भी कह सकते हैं।

(23) **माया क्रिया–** ज्ञान–दर्शन–चारित्र आदि में वंचना–कपट करना। इसके दो रूप होते हैं– प्रथम तो स्वयं अपने को ठगना, यानी कुज्ञान, कुदर्शन, कुचारित्र को सम्यग्ज्ञान–दर्शन–चारित्र समझना; और दूसरा ज्ञान–दर्शन– चारित्र की साधना का दिखावा करके अन्य भोले लोगों को ठगना।

(24) **मिथ्यादर्शन क्रिया–** मिथ्यात्वी जीवों की मिथ्यात्व सम्बन्धी क्रियाओं की प्रशंसा करके उसे और दृढ़ करना। जैसे– कोई व्यक्ति भैरु, भवानी, विश्वकर्मा आदि देवों की पूजा करता है तो यह कहना कि– ये शक्तिशाली और चमत्कारी देवी–देवता हैं, इनकी पूजा तुम करते हो, वह ठीक ही है आदि।

(25) **अप्रत्याख्यान क्रिया–** संयमघाती पापक्रियाओं का त्याग न करना।

इन पच्चीस क्रियाओं में से केवल 'ईर्यापथिकी क्रिया' ही बन्ध का हेतु नहीं है, शेष सभी क्रियाएँ कषाय की विद्यमानता के कारण सांपरायिक क्रियाएँ ही हैं।

सूत्र– तीव्र मन्द ज्ञाताज्ञात भाववीर्याऽधिकरण विशेषेभ्यस्तद्विशेषः ।7।

अर्थ– तीव्रभाव, मन्दभाव, ज्ञातभाव, अज्ञातभाव, वीर्य और अधिकरण की विशेषता से उस साम्परायिक कर्मबंध में विशेषता होती है।

प्र.17 बाह्य कर्मबंध के कारण समान होने पर भी किन कारणों से कर्मबंध में भिन्नता होती है?

उत्तर– बाह्य कर्मबंध के कारण समान होने पर भी निम्न कारणों से कर्मबंध में भिन्नता होती है–

(1) परिणाम की तीव्रता एवं मन्दता;

(2) ज्ञातभाव एवं अज्ञातभाव;

(3) वीर्य या शक्तिविशेष;

(4) जीव–अजीव रूप अधिकरण की विशेषता से।

सूत्र– अधिकरणं जीवाजीवाः ।8।

अर्थ– जीव और अजीव ये अधिकरण हैं अर्थात् कर्मबंध के साधन या उपकरण है।

प्र.18 जीवाधिकरण के कितने भेद हैं?

उत्तर– जीवाधिकरण के दो भेद हैं– (1) द्रव्य जीवाधिकरण – जीव–व्यक्ति, (2) भाव जीवाधिकरण – जीवगत कषायादि परिणाम।

प्र.19 अजीव अधिकरण के कितने भेद हैं?

उत्तर– अजीव अधिकरण के दो भेद हैं– (1) द्रव्य अजीव अधिकरण – अजीव वस्तु, (2) भाव अजीव अधिकरण – छुरी आदि निर्जीव वस्तु की तीक्ष्णता।

सूत्र- आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भ-योग कृतकारितानुमत कषाय विशेषै-स्त्रिस्त्रि-स्त्रिश्चतुश्चैकशः।9।

अर्थ– आद्य अर्थात् जीव अधिकरण क्रमशः संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ के भेद से तीन प्रकार का, योग रूप में तीन प्रकार का, कृत, कारित और अनुमत रूप से तीन प्रकार का और कषाय रूप से चार प्रकार का है। इस प्रकार 3X3X3X4 = 108 अवस्थाएँ होती हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि संसारी जीव शुभाशुभ प्रवृत्ति करते समय इन 108 अवस्थाओं में से किसी न किसी अवस्था में अवश्य रहता है। इसीलिए ये अवस्थाएँ भावाधिकरण है।

प्र.20 जीव भावाधिकरण के 108 भेदों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर– जीव भावाधिकरण के 108 भेद निम्नानुसार हैं–

संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ इन तीन को मन, वचन और काया, इन तीन योग से गुणा करने पर 9 भेद होते हैं। इन 9 भेदों को कृत, कारित और अनुमत इन तीन भेदों से गुणा करने पर 27 भेद होते हैं। इन 27 भेदों को क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायों से गुणा करने पर (27X4 = 108) जीव भावाधिकरण के 108 भेद होते हैं। कर्मबंध के समय जीव इन 108 अवस्थाओं में से किसी न किसी अवस्था में अवश्य होता है।

सूत्र- निर्वर्तनानिक्षेप संयोग निसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम्।10।

अर्थ– पर अर्थात् अजीव अधिकरण के निर्वर्तना, निक्षेप, संयोग और निसर्ग, ये चार भेद हैं, जिनके क्रमशः दो, चार, दो और तीन भेद होते हैं। इस प्रकार अजीव भावाधिकरण के कुल 11 भेद होते हैं।

प्र.21 भाव अजीव अधिकरण किसे कहते हैं? उसके भेदों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर– जीव की शुभाशुभ प्रवृत्ति में उपयोगी मूर्त्त द्रव्य जिस अवस्था में वर्तमान होता है, उसे भाव अजीव अधिकरण कहते हैं। इसके 11 भेद होते हैं–

(1) निर्वर्तना अधिकरण– का अभिप्राय रचना करना अथवा उत्पन्न करना है। इसके दो प्रकार हैं–

(क) देहदुःप्रयुक्त निर्वर्तनाधिकरण– अर्थात् काय अथवा शरीर का दुष्प्रयोग–कुचेष्टा करना।

(ख) उपकरण निर्वर्तनाधिकरण– अर्थात् हिंसा के उपकरण–शस्त्र आदि की रचना अथवा निर्माण करना।

(2) निक्षेप– का अभिप्राय रखना अथवा धरना है– इसके चार भेद हैं–

(क) सहसा निक्षेपाधिकरण– भय से अथवा शीघ्रता के कारण पुस्तक, शरीर अथवा शरीर–मल (मल–मूत्र, श्लेष्म आदि) को सहसा ही अविवेकपूर्वक इधर–उधर फैंक देना, उत्सर्जन–विसर्जन कर देना।

(ख) अनाभोग निक्षेपाधिकरण– जीव–जन्तुओं की उपस्थिति का विचार न करके पुस्तक आदि वस्तुओं को रख देना अथवा उचित स्थान पर न रखकर इधर–उधर रख देना।

(ग) दुष्प्रमार्जना निक्षेपाधिकरण– प्रमार्जन किये बिना अथवा अयतना से पुस्तक आदि उपकरणों को इधर–उधर रख देना।

(घ) अप्रत्यवेक्षित निक्षेपाधिकरण– बिना देखे ही वस्तुओं को रख देना।

(3) संयोगाधिकरण– संयोग का अभिप्राय जोड़ना अथवा मिलाना है। संयोगाधिकरण के दो भेद हैं–

(क) उपकरण संयोजना– शीत के कारण ठण्डे हुए अपने शरीर अथवा पात्र आदि को धूप में गर्म हुए रजोहरण से पौंछना, शोधना।

(ख) भक्तपान संयोजना– भोजन के पदार्थों को एक–दूसरे में मिलाना, जैसे– दूध में चीनी मिला देना। इससे स्वाद बढ़ जाता है।

(4) निसर्गाधिकरण– निसर्ग स्वभाव को कहते है। मन–वचन–काय की जो स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, वह निसर्ग है। इसके विपरीत इन तीनों को दूषित रूप से प्रवर्ताना निसर्गाधिकरण है। इसके तीन भेद हैं–

(क) मनो निसर्गाधिकरण– मन में दूषित विचार करना।

(ख) वाग् निसर्गाधिकरण– दुष्ट, कटु, हीलित वचन बोलना।

(ग) काय निसर्गाधिकरण– इस प्रकार की विकृत शारीरिक चेष्टाएँ करना, शरीर को हिलाना चलाना, जिससे हिंसा आदि पापों की अधिक सम्भावना हो।

सूत्र– **तत्प्रदोष- निह्नव- मात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शना- वरणयो:।11।**

अर्थ– प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन और उपघात ये छः ज्ञानावरणीय एवं दर्शनावरणीय कर्मबंध के आश्रव या हेतु हैं। ये प्रदोष आदि जब ज्ञान व ज्ञानी से सम्बन्धित होते हों तो वे ज्ञान प्रदोष, ज्ञान निह्नव आदि कहलाते हैं तथा दर्शन और दर्शनी के साथ सम्बन्ध रखते हों तो दर्शन प्रदोष, दर्शन निह्नव आदि कहलाते हैं।

प्र.22 ज्ञानावरणीय कर्म बंध के कारणों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर– (1) ज्ञान एवं ज्ञानी से प्रद्वेष (द्वेष–भाव) करना;

(2) ज्ञान, ज्ञानदाता गुरु का नाम छिपाना तथा अरिहंत भगवान द्वारा प्ररूपित तत्त्व–स्वरूप के विपरीत प्ररूपणा करना।

(3) अधिकारी ज्ञानग्राहक के मिलने पर भी कलुषित भाव से ज्ञान न देना अथवा ज्ञानमात्सर्य।

(4) कलुषित भाव से ज्ञान–प्राप्ति में बाधा पहुँचाना (ज्ञानान्तराय)।

(5) ज्ञानासादन– वाणी अथवा शरीर से ज्ञानदाता का निषेध करना अथवा अविनय करना।

(6) ज्ञानोपघात– ज्ञान को अज्ञान मानकर उसे नष्ट करने का विचार रखना।

सूत्र– **दु:खशोक - तापाक्रन्दन - वधपरिदेवनान्यात्म- परोभयस्थानान्यसद्वेद्यस्य।12।**

अर्थ– स्व–आत्मा, पर–आत्मा या दोनों में स्थित दु:ख, शोक, ताप, आक्रन्दन वध और परिदेवन, ये असातावेदनीय कर्मबन्ध के आश्रव या हेतु हैं।

प्र.23 असातावेदनीय कर्मबन्ध के कारण कौन–कौनसे हैं?

उत्तर– आत्मा में रहे हुए दु:ख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिदेवन ये आसातावेदनीय कर्मबन्ध के कारण हैं।

प्र.24 दु:ख और शोक में क्या अन्तर है?

उत्तर– बाह्य अथवा आन्तरिक कारण से होने वाली शारीरिक पीड़ा 'दु:ख' है, जबकि इष्ट–वियोग अथवा अनिष्ट–संयोग से होने वाली चिन्ता मानसिक 'शोक' है।

प्र.25 आक्रन्दन एवं परिदेवन में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– दु:ख से दु:खी होकर उच्च स्वर से रोना, विलाप करना आक्रन्दन है, जबकि करुणाजनक रुदन अथवा दीनता भरे विलाप को परिदेवन कहते हैं।

सूत्र– **भूतव्रत्यनुकम्पा दानं सराग संयमादियोग: क्षान्ति शौचमिति सद्वेद्यस्य।13।**

अर्थ– भूत–अनुकम्पा, व्रती–अनुकम्पा, दान, सराग–संयमादि योग, क्षमा और पवित्रता, ये सातावेदनीय कर्मबन्ध के हेतु हैं।

प्र.26 भूत–अनुकम्पा से क्या तात्पर्य है?

उत्तर– प्राणीमात्र पर करुणा बुद्धि से दया रखना 'भूत–अनुकम्पा' है।

प्र.27 व्रती–अनुकम्पा का आशय स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– व्रती–अनुकम्पा से आशय– जिन लोगों ने व्रत ग्रहण कर लिए हैं, उनके प्रति पूज्य भाव एवं श्रद्धाभाव रखते हुए उनके व्रत–पालन में सहयोगी बनना है।

प्र.28 संयमादि योग से क्या तात्पर्य है?

उत्तर– संयमादि योग में चार बातें सम्मिलित है– (1) सरागसंयम, (2) संयमासंयम, (3) अकामनिर्जरा और (4) बालतप।

प्र.29 क्षान्ति और शौच का आशय स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– क्रोध एवं मान का उपशमन क्षान्ति अथवा क्षमा है, जबकि माया एवं लोभ का त्याग शौच अथवा पवित्रता है।

सूत्र– **केवलिश्रुत-संघ-धर्म-देवावर्णवादो दर्शनमोहस्य।14।**

अर्थ– केवलज्ञानी, श्रुत, संघ, धर्म और देव का अवर्णवाद, ये दर्शन मोहनीय कर्म के बन्ध हेतु हैं।

प्र.30 अवर्णवाद किसे कहते हैं?

उत्तर– किसी व्यक्ति या वस्तु में जो दोष विद्यमान नहीं हो, वैसे मनगढ़न्त दोष लगाकर उस व्यक्ति या वस्तु की बुराई करना, अपयश फैलाना अवर्णवाद कहलाता है।

सूत्र– **कषायोदयात्तीव्रात्म-परिणामश्चारित्र मोहस्य।15।**

अर्थ– कषाय के उदय से होने वाले आत्मा के तीव्र परिणाम चारित्र मोहनीय कर्म के बन्ध हेतु या आश्रव हैं।

प्र.31 'कषायोदयात्' पद का आशय स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– 'कषायोदयात्' पद का आशय है– क्रोध, मान, माया आदि कषाय तथा हास्य, रति आदि नोकषाय के उदय से।

सूत्र– **बह्वारम्भ परिग्रहत्वं च नारकस्यायुष:।16।**

अर्थ– बहुआरम्भ एवं बहुपरिग्रह नरकायु बन्ध के हेतु हैं।

प्र.32 आरम्भ एवं परिग्रह में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– कषाय पूर्वक किया गया हिंसाजनक एवं दु:खजनक क्रियाकलाप 'आरम्भ' कहलाता है। यह वस्तु मेरी है और मैं इसका स्वामी हूँ, ऐसी भावना 'परिग्रह' है।

प्र.33 बहु आरम्भ एवं बहु परिग्रह से क्या तात्पर्य है?

उत्तर– अधिक संख्या एवं अधिक मात्रा में क्रूरभावों से किए गये हिंसाजनक कार्य बहु आरम्भ हैं और धन–सम्पत्ति एवं स्वजन–परिजन के प्रति तीव्र ममत्व एवं आसक्ति का भाव बहु परिग्रह है।

सूत्र- माया तैर्यग्योनस्य।17।

अर्थ– माया अथवा कपट का व्यवहार तिर्यंचायु बन्ध का आश्रव है।

सूत्र- अल्पारम्भ परिग्रहत्वं स्वभाव-मार्दवार्जवं च मानुषस्य।18।

अर्थ– अल्प आरम्भ, अल्प परिग्रह, स्वभाव में मृदुता और सरलता, ये मनुष्यायु बन्ध के हेतु या आश्रव हैं।

प्र.34 स्वभावतः मृदुता एवं सरलता से क्या तात्पर्य है?

उत्तर– बिना किसी स्वार्थ या लोभ से सहज होने वाली मृदुता एवं सरलता को स्वभावतः मृदुता एवं सरलता कहते हैं।

सूत्र- निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम्।19।

अर्थ– शीलरहितता एवं व्रतरहितता चारों आयुओं के बन्ध हेतु हैं।

प्र.35 चारों आयुओं के सामान्य बन्ध हेतु क्या–क्या हैं?

उत्तर– शील रहितता एवं व्रत रहितता चारों आयुओं के सामान्य बन्ध हेतु हैं।

प्र.36 शील किसे कहते हैं?

उत्तर– क्रोधादि कषायों एवं हास्यादि नोकषायों की मन्दता से होने वाली जीव की स्वाभाविक प्रवृत्ति को 'शील' कहते हैं।

प्र.37 शील रहितता एवं व्रत रहितता देवायु का सामान्य कारण किस अपेक्षा से कहा गया है?

उत्तर– युगलिक मनुष्यों की अपेक्षा से।

सूत्र- सरागसंयम संयमासंयमाकामनिर्जरा बाल तपांसि देवस्य।20।

अर्थ– सरागसंयम, संयमासंयम, अकाम निर्जरा एवं बालतप, ये देवायु बन्ध के हेतु हैं।

प्र.38 सरागसंयम एवं संयमासंयम से क्या तात्पर्य है?

उत्तर– (1) **सरागसंयम–** संयम ग्रहण कर लेने पर भी जब तक कषाय या राग का अंश शेष रहता है, तब तक वह संयम सरागसंयम कहा जाता है। यथाख्यात चारित्र के सिवाय शेष 4 चारित्र सरागसंयम वाले हैं।

(2) **संयमासंयम–** आंशिक रूप से व्रतों को ग्रहण करना, श्रावक–व्रतों का पालन करना, संयमासंयम है।

प्र.39 अकामनिर्जरा एवं बालतप में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– पराधीनतावश न चाहते हुए भी जिसमें भोजन, काम–भोग एवं क्रोधादि का त्याग होता है, वह अकाम निर्जरा कहलाती है। जबकि आत्मशुद्धि का लक्ष्य न रखकर, भौतिक सिद्धि हेतु अज्ञानपूर्वक किया जाने वाला तप 'बालतप' कहलाता है।

सूत्र- योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः।21।

अर्थ– मन, वचन एवं काय योग की वक्रता एवं विसंवाद, ये अशुभनामकर्म–बन्ध के आश्रव या हेतु हैं।

प्र.40 योगवक्रता एवं विसंवादन में क्या अन्तर है?

उत्तर– जब व्यक्ति अपने ही जीवन में अपने साथ मन, वचन, काय की कुटिलता करें तो वह 'योग वक्रता' है, जबकि दूसरों के साथ कुटिलता करें तो 'विसंवादन' है। जैसे कोई रास्ते से जा रहा हो तो उसे 'ऐसे नहीं, पर ऐसे' इस प्रकार गलत समझाकर कुमार्ग की ओर प्रवृत्ति करना।

सूत्र– विपरीतं शुभस्य।22।

अर्थ– विपरीत अर्थात् अशुभनामकर्म के हेतु के विपरीत मन, वचन व काय योग की सरलता एवं विसंवाद रहितता, शुभनाम कर्म के बन्ध हेतु हैं। जैसे– दो व्यक्तियों के भेद को मिटाकर एकता करा देना अथवा गलत रास्ते पर जाने वाले को सही रास्ते लगा देना।

सूत्र– दर्शन-विशुद्धि-र्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णं ज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी संघसाधु-समाधि- वैयावृत्त्य करण-र्महदाचार्य-बहुश्रुत-प्रवचन- भक्ति- रावश्यका-परिहाणि मार्ग प्रभावना प्रवचन-वत्सलत्वमिति तीर्थ कृत्त्वस्य।23।

अर्थ– दर्शन–विशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शील और व्रतों में अनतिचार या अप्रमाद, ज्ञान में सतत उपयोग, सतत संवेग, यथाशक्ति त्याग एवं तप, संघ–समाधि, साधु–समाधि, वैयावृत्त्य करना, अरिहंत, आचार्य, बहुश्रुत तथा प्रवचन की भक्ति, आवश्यक क्रियाओं को नहीं छोड़ना, मोक्षमार्ग की प्रभावना एवं प्रवचन–वात्सल्य, ये तीर्थंकर नाम कर्म के बन्ध–हेतु हैं।

प्र.41 निम्नलिखित शब्दों का अर्थ स्पष्ट कीजिए–

1. दर्शन–विशुद्धि, 2. संघ–समाधि, 3. प्रवचन–वत्सलता, 4. आवश्यकापरिहाणि, 5. सतत संवेग,
6. सतत ज्ञानोपयोग 7. साधु–समाधि

उत्तर– 1. **दर्शन–विशुद्धि–** वीतरागकथित तत्त्वों में दृढ़श्रद्धा व रुचि।

2. **संघ–समाधि–** चतुर्विध संघ को साता उपजाना।

3. **प्रवचन–वत्सलता–** चतुर्विध संघ के प्रति वात्सल्य भाव रखना।

4. **आवश्यकापरिहाणि–** सामायिक आदि छह आवश्यक को भाव से न छोड़ना।

5. **सतत संवेग–** लगातार संसार से उदासीन रहना।

6. **सतत ज्ञानोपयोग–** निरन्तर मोक्षमार्ग का ज्ञानाभ्यास करना।

7. **साधु–समाधि–** साधु के संयम–मार्ग में आये उपसर्गों को दूर कर समाधि पहुँचाना।

सूत्र– परात्मनिंदा प्रशंसे सदसद्गुणाच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य।24।

अर्थ– परनिंदा, आत्म–प्रशंसा, सद्गुणों को ढाँकना, असद्गुणों को प्रकट करना, ये नीच गोत्र–कर्म के बन्ध–हेतु हैं।

सूत्र– तद्विपर्ययो-र्नीचैर्वृत्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य।25।

अर्थ– उनका विपर्यय अर्थात् नीचगोत्र कर्म–बन्ध–हेतुओं के विपरीत पर– प्रशंसा, आत्म–निंदा, सद्गुण–प्रकाशन, असद्गुण– छादन, नम्रवृत्ति एवं निरभिमानता, ये उच्चगोत्र–कर्म के बन्ध–हेतु हैं।

प्र.42 आत्म–प्रशंसा को नीचगोत्र बंध का कारण क्यों माना गया है?

उत्तर– आत्मप्रशंसा का मूल अभिमान होने से इसे नीच गोत्र कर्म–बन्ध का हेतु माना गया है।

सूत्र– **विघ्नकरणमन्तरायस्य।26।**

अर्थ– दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य (पराक्रम–पुरुषार्थ) में विघ्न करना अन्तराय कर्म के बन्ध हेतु हैं।

****

अध्याय - सातवाँ

संवर तत्त्व-विचारणा

प्रस्तुत अध्याय में आश्रव को रोकने वाले संवर तत्त्व का विशद वर्णन किया गया है। विरति भी एक संवर है और सम्यक्त्व संवर के पश्चात् इसका क्रम है। अर्थात् सम्यक्त्व ग्रहण कर लेने के बाद जीव को आश्रवों से विरति होती है, वह व्रतों को धारण करता है। व्रत–धारण ही विरति संवर है।

व्रतों का स्वरूप, उनकी भावनाएँ, मैत्री–प्रमोद आदि भावनाएँ, व्रतों के प्रकार और लक्षण, व्रती के लक्षण, अगारी और अनगारी व्रती में अन्तर, श्रावक–व्रतों के अतिचार, दान का स्वरूप एवं फल इत्यादि विषयों का भी निरूपण किया गया है।

सूत्र– हिंसाऽनृतस्तेयाऽब्रह्म परिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्।1।

अर्थ– हिंसा, अनृत (झूठ), स्तेय (चोरी), अब्रह्म (मैथुन) और परिग्रह से विरति करना व्रत है।

प्र.1 व्रत किसे कहते हैं?

उत्तर– हिंसादि दोषों को समझकर उनके त्याग की प्रतिज्ञा करने के बाद पुनः उनका सेवन न करना व्रत है।

सूत्र– देशसर्वतोऽणुमहती।2।

अर्थ– थोड़े रूप (आंशिक) में विरति अणुव्रत एवं सम्पूर्ण रूप में विरति महाव्रत है।

प्र.2 व्रतों के दो भेदों का नाम लिखिए।

उत्तर– (1) अणुव्रत, (2) महाव्रत।

प्र.3 अणुव्रत एवं महाव्रत में क्या अन्तर है?

उत्तर– हिंसादि दोषों को आंशिक रूप से त्यागना अणुव्रत है। जबकि हिंसादि दोषों की मन, वचन और काया से पूर्णरूप से विरति (त्यागना) महाव्रत है। महाव्रत में हिंसादि दोषों का तीन करण तीन योग से त्याग होता है, जबकि अणुव्रत में हिंसादि दोषों का त्याग शक्ति के अनुसार होता है।

प्र.4 मूलव्रतों का नामोल्लेख कीजिए।

उत्तर– अहिंसा, सत्य, अस्तेय (अचौर्य), ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह ये मूल व्रत हैं।

प्र.5 रात्रिभोजन विरमण व्रत का समावेश किस व्रत में होता है?

उत्तर– रात्रिभोजन विरमण व्रत का समावेश अहिंसा व्रत में होता है।

प्र.6 पाँच व्रतों में प्रधानव्रत कौनसा है?

उत्तर– पाँच व्रतों में अहिंसाव्रत प्रधान व्रत है।

सूत्र– तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पंच पंच।3।

अर्थ– उन अहिंसादि व्रतों को स्थिर करने के लिए प्रत्येक व्रत की पाँच–पाँच भावनाएँ होती है।

प्र.7 अहिंसा व्रत की भावनाएँ कौन–कौनसी हैं?

उत्तर– अहिंसा व्रत की पाँच भावनाएँ इस प्रकार हैं–

(1) **ईर्या समिति–** संयम की रक्षा हेतु विवेक पूर्वक गमन करना।

(2) **एषणा समिति–** शुद्ध ऐषणिक और कल्पनिक आहार, वस्त्र, पात्रादि की गवैषणा करना।

(3) **आदान भाण्ड निक्षेपण समिति–** वस्त्र, पात्र, उपकरण आदि भलीभाँति देखकर उठाना, रखना।

(4) **आलोकित पान भोजन–** दिन में ही भोजनादि करना। सूर्यास्त बाद कुछ भी खाने–पीने की भावना भी नहीं रखना।

(5) **मनोगुप्ति–** अशुभ एवं अनिष्ट चिन्तन–मनन का त्याग करना।

प्र.8 सत्यव्रत की भावनाएँ कौन–कौनसी हैं?

उत्तर– सत्यव्रत की पाँच भावनाएँ इस प्रकार हैं–

(1) **अनुवीचि भाषण–** पापरहित एवं शास्त्र–मर्यादा सहित विचारपूर्वक वचन बोलने की भावना रखना।

(2) **क्रोध–प्रत्याख्यान–**

(3) **लोभ–प्रत्याख्यान–**

(4) **भय–प्रत्याख्यान–**

(5) **हास्य–प्रत्याख्यान–**

क्रोध, लोभ, भय तथा हास्य इन चारों के आवेग में मुख से कोई वचन न निकल जाये, ऐसा मन में चिन्तन करते रहना।

प्र.9 अस्तेय (अचौर्य) व्रत की भावनाएँ कौन–कौनसी हैं?

उत्तर– अस्तेय व्रत की पाँच भावनाएँ इस प्रकार हैं–

(1) **अनुवीचि अवग्रह याचना–** निर्दोष, अनिन्द्य (निन्दा रहित) और जीव–जन्तु के हिंसादि से रहित स्थानों में ठहरने आदि की भावना रखना।

(2) **अभीक्ष्ण अवग्रह याचन–** निर्दोष, निरवद्य द्धहिंसा रहितऋ स्थान, उपाश्रय आदि प्राप्त करने का विचार रखना।

(3) **अवग्रहावधारण–** कल्प या मर्यादा के परिमाण के अनुसार ही ग्रहण करने की भावना रखना।

(4) **साधर्मिक अवग्रह याचन–** जिस स्थान पर अपना ही साधर्मिक पहले से ठहरा हो तो उससे उस स्थान की याचना करना।

(5) **अनुज्ञापित भोजन–पान–** विधिपूर्वक लाये हुए भोजन–पान को गुरु को दिखाकर, उनकी आज्ञा लेकर ग्रहण करना।

प्र.10 ब्रह्मचर्य व्रत की भावनाओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर– ब्रह्मचर्य व्रत की पाँच भावनाएँ इस प्रकार हैं–

(1) स्त्री, पशु अथवा नपुंसक से युक्त शयनकक्ष का वर्जन।

(2) रागपूर्वक स्त्रीकथा का वर्जन।

(3) स्त्रियों के मनोहर अंगों के अवलोकन का वर्जन।

(4) पहले के रतिविलास के स्मरण का वर्जन।

(5) प्रणीतरस (अति गरिष्ठ) भोजन का वर्जन।

प्र.11 अपरिग्रह व्रत की भावनाएँ लिखिए।

उत्तर– मनोज्ञ या अमनोज्ञ स्पर्श, रस, गंध, रूप, एवं शब्द पर समभाव रखना। ये अपरिग्रह व्रत की पाँच भावनाएँ हैं।

सूत्र- हिंसादिष्विहामुत्र चापायावद्यदर्शनम्।4।

अर्थ– हिंसादि दोषों में इस लोक–सम्बन्धी आपत्ति एवं परलोक– सम्बन्धी अनिष्ट का दर्शन करना, सभी व्रतों की भावना है।

सूत्र- दुःखमेव वा।5।

अर्थ– अथवा हिंसादि दोषों में दुःख ही है, ऐसी भावना करना।

सूत्र- मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ्यानि सत्त्व-गुणाधिक-क्लिश्यमाना-विनेयेषु।6।

अर्थ– प्राणीमात्र के प्रति मैत्री–भाव गुणीजनों प्रति प्रमोद–भाव, दुःखीजनों के प्रति करुणा–भाव तथा अयोग्य पात्रों के प्रति माध्यस्थ–भाव रखने से भी अहिंसादि व्रतों के पालन में स्थिरता आती है।

प्र.12 प्रवृत्ति रूप भावनाएँ कौन–कौनसी हैं?

उत्तर– मैत्री, प्रमोद, कारुण्य एवं माध्यस्थ भावनाएँ प्रवृत्ति रूप हैं।

प्र.13 मैत्री, प्रमोद, कारुण्य एवं माध्यस्थ भावना के विषय क्या–क्या हैं?

उत्तर– मैत्री भावना का विषय– 'प्राणिमात्र', प्रमोद भावना का विषय– 'गुणीजन', कारुण्य भावना का विषय– 'दुःखीजन' और माध्यस्थ भावना का विषय– 'अयोग्यपात्र' है।

प्र.14 दुःख भावना क्या है?

उत्तर– हिंसादि पाप स्व–पर के लिए दुःख रूप है, ऐसा चिन्तन करना, दुःख भावना है।

सूत्र- जगत्काय स्वभावौ च संवेग वैराग्यार्थम्।7।

अर्थ– संवेग तथा वैराग्य के लिए जगत् के स्वभाव एवं शरीर के स्वरूप का चिन्तन करना चाहिए, क्योंकि संवेग व वैराग्य से ही अहिंसादि व्रतों के पालन में दृढ़ता एवं उत्साह आता है।

प्र.15 संवेग एवं वैराग्य में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– चतुर्गति रूप संसार को दुःखमय जानकर उससे भयभीत होना 'संवेग' है तथा भौतिक सुखों को क्षणभंगुर एवं दुःखदायी जानकर उनसे विरक्त होना 'वैराग्य' है।

प्र.16 संवेग एवं वैराग्य के लिए क्या करना चाहिए?

उत्तर– संवेग प्राप्ति के लिए जगत् के स्वभाव का चिन्तन करना चाहिए और वैराग्य के लिए शरीर के स्वरूप का चिन्तन करना चाहिए।

सूत्र- प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा।8।

अर्थ– प्रमत्त योग से होने वाला प्राणव्यपरोपण (प्राणातिपात) हिंसा है।

प्र.17 हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर– मद्य, विषय, कषाय आदि 5 प्रमादों में से किसी एक या अधिक के वशीभूत होकर मन, वचन, काया के योगों के द्वारा किसी के प्राणों को कष्ट पहुँचाना, मारना, पीटना अथवा जीवन समाप्त कर देना 'हिंसा' है।

प्र.18 हिंसा कितने प्रकार की होती है?

उत्तर– हिंसा दो प्रकार की होती है– (1) द्रव्य हिंसा और (2) भाव हिंसा।

प्र.19 द्रव्यहिंसा एवं भाव हिंसा में क्या अन्तर है?

उत्तर– प्रमत्त योगपूर्वक होने वाली हिंसा 'भाव हिंसा' कहलाती है, जबकि प्रमत्त योग के अभाव में केवल योगों द्वारा होने वाली हिंसा 'द्रव्य हिंसा' कहलाती है।

सूत्र– असदभिधानमनृतम्।9।

अर्थ– असद् की स्थापना करना असत्य है।

प्र.20 असत्य किसे कहते हैं?

उत्तर– प्रमत्त योग पूर्वक असत् कथन, असत् चिन्तन, असत् भाषण और असत् आचरण को 'असत्य' कहते हैं।

प्र.21 'असत्' शब्द का क्या अभिप्राय है?

उत्तर– असत् शब्द के दो अर्थ हैं–

(1) जो वस्तु अस्तित्व में हो उसका सर्वथा निषेध करना अथवा जिस रूप में वस्तु हो उसको उस रूप में न कहकर अन्यथा कथन करना।

(2) जो सत्य होने पर भी दूसरे को पीड़ाजनक हो, ऐसा दुर्भावयुक्त कथन 'असत्' है।

सूत्र– अदत्तादानं स्तेयम्।10।

अर्थ– वस्तु के स्वामी द्वारा बिना दिये वस्तु को लेना स्तेय या चोरी है।

प्र.22 स्तेय या चोरी किसे कहते हैं?

उत्तर– दूसरे के स्वामित्व की वस्तु को उसके स्वामी की आज्ञा के बिना चोरी की बुद्धि से ग्रहण करना, स्तेय या चोरी है। भले ही वह वस्तु तृणवत् या मूल्य रहित ही क्यों न हो।

सूत्र– मैथुनमब्रह्म।11।

अर्थ– मैथुन अर्थात् कुशील–सेवन की प्रवृत्ति अब्रह्म है।

प्र.23 मिथुन शब्द का क्या आशय है?

उत्तर– मिथुन का शाब्दिक अर्थ जोड़ा है। स्त्री–पुरुष के जोड़े के रूप में यह शब्द प्रसिद्ध है। लेकिन यहाँ मिथुन से तात्पर्य स्त्री–पुरुष, पुरुष–पुरुष, स्त्री–स्त्री अथवा मनुष्य व पशु का जोड़ा है।

प्र.24 अब्रह्म किसे कहते हैं?

उत्तर– स्त्री–पुरुष, पुरुष–पुरुष, स्त्री–स्त्री अथवा मनुष्य–पशु के जोड़े की काम–राग के आवेश से उत्पन्न मानसिक, वाचिक अथवा कायिक कुशील सेवन की प्रवृत्ति मैथुन अर्थात् अब्रह्म है।

सूत्र– मूर्च्छा परिग्रहः।12।

अर्थ– मूर्च्छा अर्थात् आसक्ति परिग्रह है। अर्थात् वस्तुओं में ममत्व भाव रखना परिग्रह है।

प्र.25 परिग्रह किसे कहा गया है?

उत्तर– जब आत्मा स्वरूप को भूलकर पर पदार्थों में आसक्त हो जाता है, उनसे गहरा ममत्व करता है, तो आध्यात्मिक दृष्टि से इस ममत्व को ही मूर्च्छा कहते हैं और यह मूर्च्छा ही परिग्रह है।

सूत्र– **निःशल्योव्रती।13।**

अर्थ– माया, निदान एवं मिथ्यादर्शन, इन तीन शल्यों से रहित व्यक्ति ही सच्चा व्रती है।

प्र.26 सच्चा व्रती किसे कहा गया है?

उत्तर– माया, निदान एवं मिथ्यादर्शन, इन तीन शल्यों का त्याग कर व्रत ग्रहण करने वाला सच्चा व्रती कहलाता है।

प्र.27 माया, निदान एवं मिथ्यादर्शन शल्य क्या है?

उत्तर– दम्भ, कपट अथवा ढोंगवृत्ति मायाशल्य है। भोगों की लालसा निदान शल्य है तथा देव–गुरु–धर्म एवं आत्मा के स्वरूप पर, सत्य पर श्रद्धा न रखना अथवा असत्य का आग्रह मिथ्यादर्शन शल्य है।

सूत्र– **अगार्यनगारश्च।14।**

अर्थ– व्रती के अगारी (गृहस्थ) और अनगार (गृहत्यागी) ये दो भेद हैं।

प्र.28 व्रती के कितने भेद हैं?

उत्तर– व्रती के दो भेद हैं– (1) अगारी और (2) अनगार

प्र.29 अगारी एवं अनगार किसे कहा गया है?

उत्तर– घर में रहकर अल्पांश में व्रतों का पालन करने वाला व्रती अगारी है। जबकि घर का त्याग कर पूर्णरूप से व्रतों का पालन करने वाला अनगार है।

सूत्र– **अणुव्रतोऽगारी।15।**

अर्थ– अहिंसादि पाँच अणुव्रतों का पालन करने वाला अगारी (श्रावक) व्रती कहलाता है।

सूत्र– **दिग्देशानर्थदण्डविरति सामायिक-पौषधोपवासोपभोग परिभोग-परिमाणऽतिथि-संविभागव्रतसम्पन्नश्च।16।**

अर्थ– अणुव्रतधारी वह अगारी व्रती दिग्विरति (दिशाओं का परिमाण– मर्यादा करने वाला), देशविरति (प्रतिदिन के लिये दिशाओं एवं उपभोग–परिभोग की मर्यादा करने वाला), अनर्थ दण्डविरति, सामायिक, पौषधोपवास, उपभोग–परिभोग परिमाण (लम्बे समय के लिये खाने–पीने आदि की मर्यादा करने वाला) और अतिथि–संविभाग इन व्रतों से भी सम्पन्न होता है।

सूत्र– **मारणान्तिकीं संलेखनां जोषिता।17।**

अर्थ– वह अगारी व्रती मारणान्तिक संलेखना का भी आराधक होता है।

प्र.30 अगारी व्रती कितने व्रतों का पालन करता है?

उत्तर– अगारी व्रती अहिंसादि पाँच अणुव्रत, दिशा परिमाण आदि तीन गुणव्रत तथा सामायिक आदि चार शिक्षा व्रतों का पालन करता है। वह मारणान्तिक संलेखना का भी आराधक होता है।

प्र.31 संलेखना व्रत किसे कहते हैं?

उत्तर– संसार की मोह–ममता एवं आहार का त्यागकर काया और कषायों को कृश करते हुए समताभावपूर्वक मरण का वरण करना संलेखना व्रत है, इसे समाधिमरण या उत्तममरण कहा गया है।

सूत्र– **शंकाकांक्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टि-प्रशंसासंस्तवाः**
सम्यग्दृष्टेरतिचाराः।18।

अर्थ– शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि–प्रशंसा एवं अन्यदृष्टि संस्तव, ये पाँच सम्यग्दर्शन के अतिचार हैं।

प्र.32 अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर– वह दोष या स्खलना जिससे व्रत भंग तो नहीं होता है, लेकिन उसमें मलिनता आ जाती है, उसे अतिचार कहते हैं।

प्र.33 कांक्षा से क्या तात्पर्य है?

उत्तर– इस लोक–सम्बन्धी और पर लोक–सम्बन्धी विषयों की अभिलाषा 'कांक्षा' है।

प्र.34 विचिकित्सा किसे कहते हैं?

उत्तर– धर्मकरणी के फल में संदेह करना एवं अस्थिर बुद्धि के कारण सत्यासत्य का निर्णय नहीं कर पाना 'विचिकित्सा' है।

सूत्र– **व्रतशीलेषु पंच पंच यथाक्रमम्।19।**

अर्थ– अहिंसादि पाँच अणुव्रतों एवं दिग्विरति आदि सात शीलों के क्रमशः पाँच–पाँच अतिचार है।

प्र.35 व्रत एवं शील से क्या तात्पर्य है?

उत्तर– श्रद्धा एवं ज्ञानपूर्वक स्वीकृत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये चारित्र धर्म के मूलनियम 'व्रत' कहलाते हैं जबकि मूलनियमों के पौषक दिग्विरति, देशविरति अनर्थदण्डविरति, सामायिक, पौषधोपवास, उपभोग–परिभोग परिमाण और अतिथि संविभाग आदि सात नियम 'शील' कहे गये हैं।

सूत्र– **बन्धवधच्छविच्छेदातिभारा-रोपणान्नपाननिरोधाः।20।**

अर्थ– बन्ध, वध, छविच्छेद, अतिभार का लादना और अन्नपान का निरोध, ये पाँच प्रथम अहिंसा अणुव्रत के अतिचार हैं।

प्र.36 वध एवं छविच्छेद से क्या तात्पर्य है?

उत्तर– लाठी, चाबुक आदि से प्रहार करना 'वध' और नाक, कान आदि अवयवों का छेदन–भेदन करना 'छविच्छेद' कहा गया है।

सूत्र– **मिथ्योपदेश-रहस्याभ्याख्यान-कूटलेखक्रिया-**
न्यासापहार-साकार-मन्त्रभेदाः।21।

अर्थ– मिथ्या उपदेश, गुप्त बात प्रकट करना, झूठे लेख लिखना, धरोहर हजम करना और गुप्त मन्त्रणा का भण्डाफोड़ कर देना, ये पाँच सत्य अणुव्रत के अतिचार हैं।

प्र.37 रहस्याभ्याख्यान एवं साकारमन्त्रभेद से आप क्या समझते हो?

उत्तर– विनोद या हास्य–भावना से किसी का गुप्त रहस्य प्रकट करना या किसी पर दोषारोपण करना 'रहस्याभ्याख्यान' है, जबकि पिशुनता एवं दुष्टभाव से गुप्त मन्त्रणा का भण्डाफोड़ करना 'साकार मन्त्र भेद' है।

सूत्र- स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिक-
मानोन्मान प्रतिरूपक व्यवहाराः।22।

अर्थ– स्तेन प्रयोग, स्तेनाहृतादान, विरोधी राज्य का अतिक्रम, हीनाधिक मानोन्मान और प्रतिरूपक व्यवहार, ये अचौर्य अणुव्रत के अतिचार हैं।

प्र.38 स्तेन प्रयोग एवं स्तेनाहृतादान से क्या अभिप्राय है?

उत्तर– स्तेन प्रयोग से तात्पर्य चोरी के उपाय बतलाना या प्रेरणा देना और स्तेनाहृतादान से तात्पर्य चोरी की वस्तु को लेना, खरीदना है।

प्र.39 मानोन्मान एवं प्रतिरूपक व्यवहार क्या है?

उत्तर– मानोन्मान से तात्पर्य तौलने के पैमाने या बाट छोटे–बड़े रखना और प्रतिरूपक व्यवहार से तात्पर्य असली के बदले नकली वस्तु देना अथवा असली में मिलावट करना है।

प्र.40 'विरुद्ध राज्यातिक्रम' से क्या आशय है?

उत्तर– तस्करी, कर चोरी, चुँगी चोरी आदि 'विरुद्ध राज्यातिक्रम' है।

सूत्र- परविवाहकरणेत्वरपरिगृहीताऽपरिगृहीतागमनानंगक्रीडातीव्र-
कामाभिनिवेशाः।23।

अर्थ– परविवाहकरण, इत्वर परिगृहीतागमन, अपरिगृहीतागमन, अनंगक्रीड़ा और तीव्रकामाभिनिवेश, ये ब्रह्मचर्य अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं।

प्र.41 इत्वरपरिगृहीता एवं अपरिगृहीतागमन क्या है?

उत्तर– अल्प आयु की अथवा किसी दूसरे द्वारा स्वीकृत स्त्री के साथ गमन करना या भोग करना इत्वर परिगृहीता गमन है जबकि जिसके साथ विवाह न हुआ हो, ऐसी स्त्री के साथ गमन करना अपरिगृहीता गमन है।

प्र.42 अनंग क्रीड़ा एवं तीव्रकामाभिनिवेश क्या है?

उत्तर– जनन अंगों के अतिरिक्त अन्य अंगों से काम का सेवन करना अनंगक्रीड़ा तथा कामभोग में तीव्र आसक्ति रखना तीव्र कामाभिनिवेश है।

सूत्र- क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्य- प्रमाणातिक्रमाः।24।

अर्थ– क्षेत्र और वास्तु, हिरण्य और सुवर्ण, धन और धान्य, दास और दासी एवं कुप्य के प्रमाण का अतिक्रम ये पाँच अपरिग्रह अणुव्रत के अतिचार हैं।

सूत्र- ऊर्ध्वाधस्तिर्यग् व्यतिक्रमः क्षेत्रवृद्धि स्मृत्यंतर्धानानि।25।

अर्थ– ऊँची–नीची और तिरछी दिशाओं में किये हुए परिमाण (मर्यादा) का अतिक्रमण करना, मर्यादित क्षेत्र को बढ़ा लेना और स्मृति अन्तर्धान अर्थात् की हुई मर्यादा को भूल जाना, ये पाँच दिशा–परिमाण व्रत के अतिचार हैं।

प्र.43 स्मृति–अन्तर्धान से क्या अभिप्राय है?

उत्तर– प्रमाद या मोह के कारण स्वीकृत व्रत की मर्यादा को भूल जाना स्मृति–अन्तर्धान है।

सूत्र- आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलप्रक्षेपाः।26।

अर्थ– आनयन प्रयोग, प्रेष्यप्रयोग, शब्दानुपात, रूपानुपात और पुद्गल प्रक्षेप, ये पाँच देशविरति व्रत के अतिचार हैं।

प्र.44 आनयन प्रयोग एवं प्रेष्य प्रयोग से क्या आशय है?

उत्तर– मर्यादित सीमा से बाहर की वस्तु मँगवाना 'आनयन प्रयोग' तथा मर्यादित सीमा से बाहर वस्तु भेजना 'प्रेष्य प्रयोग' है।

सूत्र- कन्दर्प कौत्कुच्य मौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगाधि- कत्वानि।27।

अर्थ– कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, असमीक्ष्य–अधिकरण और उपभोग का आधिक्य, ये अनर्थदण्ड विरमण व्रत के पाँच अतिचार हैं।

प्र.45 कन्दर्प एवं कौत्कुच्य से क्या अभिप्राय है?

उत्तर– रागवश कामभाव को बढ़ाने वाला असभ्य भाषण तथा हास–परिहास 'कन्दर्प' है तथा नट, भाण्ड जैसी शारीरिक चेष्टाएँ करना 'कौत्कुच्य' है।

प्र.46 असमीक्ष्याधिकरण एवं उपभोगाधिक्य का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– अपनी आवश्यकता का विचार किए बिना हिंसक अस्त्र–शस्त्रों का संग्रह करना एवं उन सावद्य हथियारों को दूसरों को देते रहना 'असमीक्ष्याधिकरण' है, जबकि उपभोग–परिभोग की वस्तुओं का आवश्यकता से अधिक संग्रह करना 'उपभोगाधिक्य' है।

सूत्र- योग-दुष्प्रणिधानानादर स्मृत्युपस्थापनानि।28।

अर्थ– काय दुष्प्रणिधान, वचन दुष्प्रणिधान, मन दुष्प्रणिधान, अनादर और स्मृति का अनुस्थापन, ये पाँच सामायिक व्रत के अतिचार हैं।

प्र.47 दुष्प्रणिधान का क्या आशय है?

उत्तर– दुष्प्रणिधान के तीन अर्थ हैं– (1) दुरुपयोग करना, (2) जैसा करना चाहिए वैसा उपयोग न करना, (3) दूषित रूप से उपयोग करना।

प्र.48 मन दुष्प्रणिधान, वचन दुष्प्रणिधान एवं काय दुष्प्रणिधान का क्या अभिप्राय है?

उत्तर– मन का अशुभ प्रवृत्तियों अथवा आर्त्त–रौद्र ध्यान में चलायमान होना मन दुष्प्रणिधान है। सावद्यकारी (पापयुक्त) वचन बोलना अथवा वचन को चलायमान करना वचन दुष्प्रणिधान है तथा काया का अशुभ प्रवृत्तियों में चलायमान होना काय दुष्प्रणिधान है।

प्र.49 अनादर एवं स्मृति अनुस्थापन का क्या अर्थ है?

उत्तर– अनादर से तात्पर्य सामायिक में भक्ति, रुचि एवं उत्साह का अभाव होना तथा स्मृति अनुस्थापन से तात्पर्य मन के विचलित होने से सामायिक की स्मृति न रहना (एकाग्रता का अभाव) है।

सूत्र- अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादाननिक्षेप- संस्तारोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थापनानि।29।

अर्थ– अप्रत्यवेक्षित और अप्रमार्जित में उत्सर्ग, अप्रत्यवेक्षित और अप्रमार्जित में आदान निक्षेप, अप्रत्यवेक्षित और अप्रमार्जित संस्तारक का उपक्रम, अनादर एवं स्मृति का अनुस्थापन, ये पौषधोपवासव्रत के पाँच अतिचार हैं।

प्र.50 अप्रत्यवेक्षित एवं अप्रमार्जित पदों का क्या आशय है?

उत्तर– जीवादि को भलीभाँति नहीं देखना अप्रत्यवेक्षित तथा स्थानादि को कोमल उपकरण अथवा रजोहरण आदि से साफ न किया जाना अप्रमार्जित पद का अभिप्राय है।

प्र.51 उत्सर्ग तथा आदान निक्षेप से क्या अभिप्राय है?

उत्तर– शरीर–मल–मूत्र–श्लेष्म आदि फैंक देना, डाल देना, त्याग कर देना 'उत्सर्ग' कहलाता है तथा वस्तुओं, उपकरणों को उठाना–रखना, 'आदान–निक्षेप' है।

सूत्र- सचित्त-संबद्ध-संमिश्राभिषव-दुष्पक्वाहाराः।30।

अर्थ– सचित्त आहार, सचित्त सम्बद्ध आहार, सचित्त संमिश्र आहार, अभिषव आहार और दुष्पक्व आहार, ये उपभोग परिभोग परिमाण व्रत के पाँच अतिचार हैं।

प्र.52 सचित्त, सचित्त संबद्ध एवं सचित्त संमिश्र आहार किसे कहते हैं?

उत्तर– 1. सचित्त वनस्पति आदि का आहार करना, सचित्त आहार है।

2. बीज या गुठली आदि सचित्त पदार्थ से युक्त पके फल का आहार सचित्त संबद्ध आहार है।

3. तिल, खस–खस आदि सचित्त बीजों से युक्त लड्डु आदि का आहार सचित्त संमिश्र आहार है।

प्र.53 अभिषव आहार एवं दुष्पक्व आहार किसे कहा गया है?

उत्तर– मादक द्रव्य का सेवन अभिषव आहार तथा अधपके हुए पदार्थ का आहार दुष्पक्व आहार कहा गया है।

सूत्र- सचित्त-निक्षेपपिधान-परव्यपदेश-मात्सर्य- कालातिक्रमाः।31।

अर्थ– सचित्तनिक्षेप, सचित्तपिधान, परव्यपदेश, मात्सर्य और कालातिक्रम, ये पाँच अतिथि संविभाग व्रत के अतिचार हैं।

प्र.54 सचित्त निक्षेप व सचित्तपिधान से क्या आशय है?

उत्तर– अचित्त (सूझती) वस्तु सचित्त पर रख देना 'सचित्त निक्षेप' तथा अचित्त वस्तु को सचित्त पदार्थों से ढँक देना 'सचित्तपिधान' कहलाता है।

प्र.55 परव्यपदेश से क्या आशय है?

उत्तर– दान न देने की भावना से अपनी वस्तु पराई कहना 'परव्यपदेश' है।

प्र.56 कालातिक्रम व मात्सर्य का क्या अभिप्राय है?

उत्तर– समय पर दान न देना, असमय में दान के लिए कहना 'कालातिक्रम' अतिचार तथा ईर्ष्या अथवा अहंकार भाव से दान देना 'मात्सर्य' अतिचार है।

सूत्र- जीवितमरणाशंसामित्रानुराग सुखानुबन्धनिदानकरणानि।32।

अर्थ– जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुराग, सुखानुबन्ध और निदानकरण, ये मारणान्तिक संलेखना व्रत के पाँच अतिचार हैं।

प्र.57 जीविताशंसा एवं मरणाशंसा से क्या तात्पर्य है?

उत्तर– संलेखनाव्रत स्वीकार करके पूजा, सत्कार आदि देखकर अधिक जीने की अभिलाषा 'जीविताशंसा' है, जबकि रोगादि उपद्रवों से घबराकर शीघ्र मरने की इच्छा 'मरणाशंसा' है।

प्र.58 मित्रानुराग एवं सुखानुबंध का क्या आशय है?

उत्तर– संलेखना ग्रहण करके मित्रादि से अनुराग रखना 'मित्रानुराग' तथा अनुभूत सुखों का स्मरण करना 'सुखानुबन्ध' है।

सूत्र- अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्।33।

अर्थ– अनुग्रह के लिए अपनी किसी वस्तु का त्याग करना दान कहलाता है।

सूत्र- विधिद्रव्य-दातृपात्र-विशेषात्तद्विशेषः।34।

अर्थ– दान की विधि, देय वस्तु, दानदाता एवं पात्र की विशेषता से दान में विशेषता आती है।

प्र.59 दान किसे कहा गया है?

उत्तर– स्व–पर कल्याण अथवा स्व–पर उपकार के लिए अपने अधिकार की वस्तु पर से ममत्व हटाकर, उसे दूसरों को देना 'दान' कहलाता है।

प्र.60 दान के चार अंग कौनसे हैं?

उत्तर– दान के चार अंग निम्नलिखित हैं– (1) दाता स्वयं (2) द्रव्य– दी जाने वाली वस्तु, (3) दान की विधि या तरीका और (4) पात्र– दान लेने वाला।

प्र.61 दान ग्रहण करने वाले सुपात्र किन्हें कहा गया है?

उत्तर– महाव्रती, अणुव्रती और सम्यक्त्वी दान ग्रहण करने वाले सुपात्र कहे गये हैं।

प्र.62 दाता की क्या–क्या विशेषताएँ हैं?

उत्तर– (1) पात्र के प्रति श्रद्धा का होना, (2) पात्र के प्रति तिरस्कार या द्वेष न होना, (3) दान देते समय तथा दान देने के बाद दुःखी न होना, ये दाता की तीन प्रमुख विशेषताएँ हैं।

कर्मग्रन्थ भाग–2

गुणस्थानों में कर्म-प्रकृतियों के बन्ध, उदय, उदीरणा, सत्ता द्वारों का विवरण

बन्ध योग्य प्रकृतियाँ 120, उदय व उदीरणा योग्य प्रकृतियाँ 122, सत्ता योग्य प्रकृतियाँ 148

ओघ– सामान्य रूप से बिना किसी विशेष गुणस्थान व जीव विशेष की विवक्षा के कथन।

बन्ध–विवरण

ओघ **मूलप्रकृति 8** **उत्तर प्रकृति 120**

(1) ज्ञानावरण–5, (2) दर्शनावरण–9, (3) वेदनीय–2, (4) मोहनीय–26, (5) आयु–4, (6) नाम–67 (पिण्ड प्रकृतियाँ 39, प्रत्येक प्रकृतियाँ–8, त्रसदशक–10, स्थावरदशक 10 = 67) (7) गोत्र–2, (8) अन्तराय–5 = 120

1. मिथ्यात्व **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 117**

तीर्थंकर और आहारकद्विक (आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग नामकर्म) का बन्ध नहीं होता।

2. सास्वादन **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 101**

नरकत्रिक (नरकगति, नरकायु, नरकानुपूर्वी) जाति–चतुष्क (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) स्थावरचतुष्क (स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण नाम) हुंडसंस्थान, सेवार्तसंहनन, आतपनाम, नपुंसकवेद, मिथ्यात्वमोहनीय = 16 प्रकृतियों का बन्धविच्छेद मिथ्यात्व गुणस्थान के अन्त में हो जाने से शेष 101 का बंध सम्भव है।

3. मिश्र **मूल 7** **उत्तर प्रकृति 74**

तिर्यंचत्रिक (तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, तिर्यंचानुपूर्वी) स्त्यानर्द्धित्रिक (निद्रा–निद्रा, प्रचला–प्रचला, स्त्यानर्द्धि) दुर्भगत्रिक (दुर्भगनाम, दुःस्वरनाम, अनादेयनाम) अनन्तानुबन्धीचतुष्क (अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ), मध्यम संस्थानचतुष्क (न्यग्रोधपरिमण्डल, वामन, सादि, कुब्ज) मध्यम संहननचतुष्क (ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका) नीचगोत्र, उद्योतनाम, अशुभविहायो– गति, स्त्रीवेद = 25 का बन्ध दूसरे गुणस्थान में अन्त होने व मिश्र गुणस्थान में किसी आयु का बन्ध सम्भव न होने से शेष दो आयु (मनुष्यायु, देवायु) को घटा देने से 27 प्रकृतियाँ कम होती हैं।

4. अविरतसम्यग्दृष्टि **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 77**

मनुष्यायु, देवायु व तीर्थंकर नाम का बन्ध होने से मिश्र गुणस्थान की 74 प्रकृतियों में ये तीन जोड़ने से 77 प्रकृतियों का बन्ध सम्भव है। नोट– नरक व देव जो चतुर्थ गुणस्थानवर्ती हैं, वे तो मनुष्यायु का और तिर्यंच व मनुष्य, देवायु का बन्ध करते हैं।

5. देशविरत **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 67**

वज्रऋषभनाराचसंहनन, मनुष्यत्रिक (मनुष्यगति, मनुष्यायु, मनुष्यानुपूर्वी) अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, औदारिकद्विक (औदारिकशरीर, औदारिक अंगोपांग) कुल 10 प्रकृतियों का विच्छेद चतुर्थ गुणस्थान के अन्त समय में होने से शेष 67 का बन्ध सम्भव है।

6. प्रमत्तविरत **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 63**

प्रत्याख्यानावरणचतुष्क का बन्धविच्छेद पाँचवें गुणस्थान के अन्त समय में हो जाने से 67–4 = 63 प्रकृतियों का बन्ध सम्भव है।

7. अप्रमत्तविरत **मूल 8/7** **उत्तर प्रकृति 59/58**

छठे गुणस्थान के अन्त में– अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, अयश:कीर्ति, असातावेदनीय, इन छह प्रकृतियों का बन्धविच्छेद हो जाने से शेष रही 56. (जो जीव छठे गुणस्थान में देवायु का बन्ध प्रारम्भ कर उस बन्ध को वहीं समाप्त कर सातवें गुणस्थान को प्राप्त करता है, उसके 56 प्रकृतियाँ व जो जीव छठे गुणस्थान में देवायु का बन्ध आरम्भ कर सातवें में समाप्त करता है उसके 56+1=57 प्रकृतियों का बन्ध रहता हैं) तथा सातवें गुणस्थान में आहारकशरीर, आहारक–अंगोपांग का बन्ध सम्भव होने से दो जोड़ने से 56+2=58, 57+2=59 प्रकृतियों का बन्ध सम्भव है।

8. अपूर्वकरण **मूल 7** **उत्तर प्रकृति 58, 56, 26**

प्रथम भाग में 58 कर्मप्रकृतियों का बन्ध सम्भव है।

नोट :– (1) इस गुणस्थान में देवायु के बन्ध का प्रारम्भ व समाप्ति नहीं होती।

(2) प्रथम भाग के अन्त में निद्रा, प्रचला का विच्छेद हो जाता है अत: 58–2=56

(3) दूसरे भाग से छठे भाग तक इन्हीं 56 का बन्ध सम्भव है। छठे भाग के अन्त में सुरद्विक (देवगति, देवगत्यानुपूर्वी) पंचेन्द्रियजाति, शुभविहायोगति, त्रसनवक (त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय) औदारिकशरीर को छोड़ शेष चार शरीर, औदारिक अंगोपांग को छोड़ शेष दो अंगोपांग, समुचतुरस्त्रसंस्थान, निर्माण, तीर्थंकर, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघुचतुष्क (अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास) इन 30 प्रकृतियों का बन्ध विच्छेद होता है। सातवें भाग में ये नहीं रहतीं। अत: 56–30=26।

(4) आठवें गुणस्थान के सातवें भाग के अन्त में हास्य, रति, जुगुप्सा, भय इन 4 प्रकृतियों का विच्छेद हो जाने से 26–4=22 प्रकृतियों का बन्ध नौवें गुणस्थान में सम्भव है।

9. अनिवृत्तिबादर **मूल 7** **उत्तर प्रकृति 22,21,20,19,18**

इस गुणस्थान के प्रारम्भ में 22 प्रकृतियों का बन्ध।

(1) पहले भाग के अन्त में पुरुषवेद का विच्छेद = 21

(2) दूसरे भाग के अन्त में संज्वलन क्रोध का विच्छेद = 20

(3) तीसरे भाग के अन्त में संज्वलन मान का विच्छेद = 19

(4) चौथे भाग में संज्वलन माया का विच्छेद = 18

(5) पाँचवें भाग के अन्त समय में लोभ का बन्ध नहीं होता। अत: दसवें गुणस्थान में शेष 17 प्रकृतियाँ रहेंगी।

10. सूक्ष्मसंपराय **मूल 6** **उत्तर प्रकृति 17**

दसवें गुणस्थान के अन्त समय में– दर्शनावरणीय–4, उच्चगोत्र–1, ज्ञानावरणीय–5, अन्तराय–5, यश:कीर्तिनाम–1 = 16 प्रकृतियों का बन्ध विच्छेद हो जाता है, शेष 1 प्रकृति रहती है।

11. उपशान्तमोह **मूल 1** **उत्तर प्रकृति 1**

सातावेदनीय का बन्ध होता है। (स्थिति इसकी दो समय मात्र की होती है। योग निमित्तक है)।

12. क्षीणमोह **मूल 1** **उत्तर प्रकृति 1**

सातावेदनीय (योगनिमित्तक होने से स्थिति दो समय मात्र की है)।

13. सयोगिकेवली **मूल 1** **उत्तर प्रकृति 1**

बारहवें गुणस्थान की तरह

14. अयोगिकेवली **मूल 0** **उत्तर प्रकृति 0**

अबन्धक दशा

बन्ध द्वार सम्बन्धी ज्ञातव्य

बन्ध—

मिथ्यात्व आदि के निमित्त से कर्म–पुद्गलों (कार्मण–वर्गणाओं) का आत्मा के साथ एक क्षेत्रावगाढ़ सम्बन्ध होना बन्ध कहलाता है। इस सम्बन्ध को मोटे रूप में दूध में पानी अथवा लोहे में अग्नि के उदाहरण से समझा जा सकता है।

एक क्षेत्रावगाढ़ सम्बन्ध—

जिस आकाश प्रदेश पर जीव के प्रदेश स्थित हैं उसी आकाश प्रदेश पर कार्मण–वर्गणा के प्रदेशों का स्थित हो जाना, एक क्षेत्रावगाढ़ सम्बन्ध कहलाता है।

बन्ध योग्य प्रकृतियों की विवक्षा औधिक रूप से (सामान्य रूप से)—

कुल 148 कर्म–प्रकृतियों में से 28 प्रकृतियों का बन्ध होता ही नहीं है। दर्शन मोहनीय की समकित मोहनीय एवं मिश्र मोहनीय को बन्ध योग्य नहीं माना है क्योंकि मूल में मिथ्यात्व प्रकृति के बन्ध के तीन विभागों में क्रमशः विशुद्ध और अर्द्धशुद्ध अवस्था ही समकित मोहनीय और मिश्र मोहनीय है। इसी प्रकार से नाम कर्म की 5 बन्धन, 5 संघातन तथा 16 वर्णादि को बन्ध योग्य नहीं माना है। शरीर के बिना बन्धन तथा संघातन नहीं हो सकते। अतः शरीर में ही बन्धन–संघातन को सम्मिलित कर लिया है। इसी प्रकार 5 वर्ण, 2 गन्ध, 5 रस और 8 स्पर्श इन बीस वर्णादि का समावेश वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श इन चारों में कर लेने के कारण बन्ध में 4 भेद ही माने गये हैं। अभेद अपेक्षा से इन चार वर्णादि में 20 वर्णादि भेद शामिल हो जाते हैं।

अबन्ध— अमुक गुणस्थान में कर्म का बन्ध नहीं हो किन्तु आगे हो तो वह अबन्ध कहलाता है।

बन्ध विच्छेद— अमुक गुणस्थान के आगे कर्म का बन्ध नहीं हो तो वह बन्ध–विच्छेद कहलाता है।

ज्ञातव्य—

1. तीर्थंकर नामकर्म का बन्ध सम्यक्त्व सापेक्ष है तथा चौथे से आठवें गुणस्थान के बीच ही बन्धता है।
2. आहारक द्विक का बन्ध संयम सापेक्ष है तथा अप्रमत्त अवस्था में ही बन्धता है।
3. प्रथम गुणस्थान से सीधा दूसरा गुणस्थान प्राप्त नहीं होता। उपशम समकित वाले चौथे, पाँचवें अथवा छठे गुणस्थान से नीचे गिरने पर दूसरे गुणस्थान में आते हैं। उनके 101 प्रकृतियों का बन्ध सम्भव है।
4. नरक गति प्रायोग्य बन्ध प्रथम गुणस्थान में, तिर्यञ्च गति प्रायोग्य दूसरे गुणस्थान तक, मनुष्य गति प्रायोग्य चौथे गुणस्थान तक तथा देव गति प्रायोग्य बन्ध आठवें गुणस्थान तक होता है।
5. अपर्याप्त नाम कर्म प्रायोग्य बन्ध प्रथम गुणस्थान में सम्भव है।
6. पंचेन्द्रिय प्रायोग्य बन्ध आठवें गुणस्थान तक होता है, शेष जाति प्रायोग्य बन्ध पहले गुणस्थान में ही सम्भव है।
7. तीसरे गुणस्थान में किसी भी आयु का बन्ध नहीं होता है।
8. अनन्तानुबन्धी कषाय का बन्ध दूसरे गुणस्थान तक, अप्रत्याख्यानी का चौथे गुणस्थान तक, प्रत्याख्यानावरण का बन्ध पाँचवें गुणस्थान तक तथा संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ का बन्ध नवमें गुणस्थान तक होता है।

9. नीच गोत्र का बन्ध दूसरे गुणस्थान तक ही होता है।
10. पाँचवें गुणस्थान से सिर्फ देव प्रायोग्य बन्ध होता है। अतः औदारिक प्रायोग्य बन्ध नहीं होता है।
11. असाता का बन्ध प्रमादी के ही होता है।
12. अप्रमत्त अवस्था में आयु का बन्ध शुरु नहीं होता है। यदि कोई प्रमत्त आयु बाँधना प्रारम्भ करे तथा आयुबन्ध पूर्ण होने से पूर्व अप्रमत्तता आ जाय तो सातवें गुणस्थान में आयु का बन्ध पूर्ण कर सकता है अर्थात् आयुबन्ध पहले से सातवें गुणस्थान तक तीसरे को छोड़कर होता है।
13. आठवें गुणस्थान आदि के भाग से तात्पर्य अन्तर्मुहूर्त्त के संख्यातवें भाग के बीतने से है।
14. आठवें गुणस्थान के सातवें भाग में छूटने वाली सभी 30 प्रकृतियाँ नामकर्म की ही हैं।
15. नपुंसक वेद का बन्ध पहले गुणस्थान में, स्त्रीवेद का पहले, दूसरे गुणस्थान में तथा पुरुषवेद का बन्ध पहले से नवमें गुणस्थान तक होता है।
16. ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें गुणस्थान में बन्ध का कारण मात्र योग ही होता है। अतः मात्र साता वेदनीय का ही बन्ध होता है।
17. योग तथा कषाय दोनों के नहीं होने पर बन्ध होता ही नहीं है। अतः चौदहवें गुणस्थान में बन्ध नहीं है।
18. सभी प्रकृतियों के बन्ध का कारण उस बन्ध योग्य जीव के परिणाम विशेष हैं।
19. जिन प्रकृतियों का बन्ध जितने कारणों से होता है, उतने कारणों के रहने तक ही उन प्रकृतियों का बन्ध होता रहता है और किसी एक कारण के भी कम हो जाने से उन कर्म प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता है।
20. सम्यग्दृष्टि नारकी तथा देवता, मनुष्य प्रायोग्य तथा सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च व मनुष्य, देव प्रायोग्य बन्ध करते हैं।
21. पहले से नवमें गुणस्थान तक यह नियम है कि जिस गुणस्थान में जिस कषाय का उदय होता है उस गुणस्थान में उस कषाय का बन्ध होता है।
22. मोहनीय कर्म का बन्ध बादर (तीव्र) कषाय के उदय में होता है, सूक्ष्म उदय में नहीं। बादर कषाय नवमें गुणस्थान तक उदय में रहती है, अतः मोहनीय का बन्ध भी नवमें गुणस्थान तक ही होता है।

****

उदय–विवरण

ओघ (सामान्य) **मूल प्रकृति 8** **उत्तर प्रकृति 122**

ज्ञानावरणीय–5, दर्शनावरणीय–9, वेदनीय–2, मोहनीय–28, आयु–4, नाम–67, गोत्र–2, अन्तराय–5 = 122

(मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय इन दो प्रकृतियों का बंध नहीं होता, किन्तु मिथ्यात्व मोहनीय त्रिपुंज कर लेने से ये दोनों प्रकृतियाँ सत्ता में आ जाने से इन दोनों का उदय होता है, अतः मोहनीय की 28 प्रकृतियाँ गिनी गई हैं।)

1. मिथ्यात्व **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 117**

मिश्रमोहनीय, सम्यक्त्वमोहनीय, आहारकद्विक और तीर्थंकरनामकर्म का उदय नहीं होने से 5 प्रकृतियाँ कम हुई।

2. सास्वादन **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 111**

सूक्ष्मत्रिक (सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण नाम) आतप नाम, मिथ्यात्वमोहनीय, नरकानुपूर्वी = 6 प्रकृतियों का उदय नहीं होता है।

3. मिश्र **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 100**

अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्थावरनाम, एकेन्द्रियजाति, विकलेन्द्रियत्रिक (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) तिर्यंचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, देवानुपूर्वी = 12 प्रकृतियों का उदय नहीं होता, किन्तु मिश्रमोहनीय का उदय होता है। अतः (111–12+1) = 100 का उदय सम्भव है।

4. अविरतसम्यग्दृष्टि **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 104**

सम्यक्त्वमोहनीय व आनुपूर्वीचतुष्क (नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देवानुपूर्वी) का उदय सम्भव है, किन्तु मिश्रमोहनीय का उदय नहीं होता। अतः 100+5–1 = 104 का उदय सम्भव है।

5. देशविरत **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 87**

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, वैक्रियाष्टक (देवगति, देवायु, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकायु, नरकानुपूर्वी, वैक्रियशरीर, वैक्रिय अंगोपांग) दुर्भगनाम, अनादेयनाम, अयशःकीर्तिनाम = 17 का उदय सम्भव नहीं होता। अतः 104–17 = 87 का उदय सम्भव है।

6. प्रमत्तविरत **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 81**

तिर्यंचगति, तिर्यंञ्चायु, नीचगोत्र, उद्योतनाम, प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्क = 8 का उदय तो सम्भव नहीं, किन्तु आहारकद्विक का सम्भव होने से 87–8+2 = 81 प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं।

7. अप्रमत्तविरत **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 76**

स्त्यानर्द्धित्रिक (निद्रा–निद्रा, प्रचला–प्रचला, स्त्यानर्द्धि) व आहारकद्विक का अप्रमत्त अवस्था में उदय सम्भव नहीं। अतः 81–5 = 76 का उदय सम्भव है।

(यद्यपि आहारक लब्धि की प्राप्ति अप्रमत्त अवस्था में होती है, किन्तु आहारक लब्धि का प्रयोग अर्थात् शरीर बनाने का कार्य प्रमाद अवस्था में ही होता है। अतः सातवें गुणस्थान में आहारक द्विक का उदय नहीं माना गया है।)

8. अपूर्वकरण **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 72**

सम्यक्त्वमोहनीय, अर्धनाराच, कीलिका, सेवार्त संहनन इन चार प्रकृतियों का उदयविच्छेद सातवें गुणस्थान के अन्तिम समय में हो जाने से इस गुणस्थान में इन चार का उदय सम्भव नहीं। अतः 76–4 = 72 प्रकृतियों का उदय सम्भव है।

9. अनिवृत्तिबादर **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 66**

हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा = 6 प्रकृतियों का उदय सम्भव नहीं है। क्योंकि इनका उदयविच्छेद आठवें गुणस्थान के अन्त समय में हो जाता है।

10. सूक्ष्मसंपराय **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 60**

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया = 6 प्रकृतियों का उदय सम्भव नहीं।

(इनका उदय तो नौवें गुणस्थान के अन्तिम समय तक ही होता हैं)

नोट– यदि श्रेणि का प्रारम्भक पुरुष है तो पहले पुरुषवेद के, फिर स्त्रीवेद के, फिर नपुंसक वेद के उदय को रोकेगा, तदनन्तर संज्वलनत्रिक को। यदि स्त्री है तो पहले स्त्रीवेद को, फिर पुरुषवेद, फिर नपुंसकवेद के उदय को और यदि नपुंसक है तो पहले नपुंसकवेद को, फिर स्त्रीवेद को, फिर पुरुषवेद के उदय को रोकेगा।

11. उपशांतमोह **मूल 7** **उत्तर प्रकृति 59**

संज्वलन लोभ का उदय नहीं रहता है।

(इसका उदय तो दसवें गुणस्थान के अन्तिम समय में विच्छेद हो जाता है। जिनको ऋषभनाराच व नाराच संहनन होता है, वे ही उपशम श्रेणि करते हैं।)

12. क्षीणमोह **मूल 7** **उत्तर प्रकृति 57**

ऋषभनाराच व नाराचसंहनन का उदय सम्भव नहीं। इनका उदय ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है। क्षपकश्रेणि वज्रऋषभनाराचसंहनन के बिना नहीं होती, अतः 59–2 = 57 बारहवें गुणस्थान के अन्त समय में निद्रा, प्रचला का भी उदय नहीं रहता। अतः 57–2 = 55

13. सयोगिकेवली **मूल 4** **उत्तर प्रकृति 42**

ज्ञानावरणीय 5, दर्शनावरणीय 4, अन्तराय 5 = 14 का उदय बारहवें गुणस्थान के अन्तिम समय तक ही रहता है। अतः 55–14 = 41 तथा तीर्थंकर नामकर्म का उदय हो सकने से 41+1 = 42 प्रकृतियों का उदय सम्भव है।

14. अयोगिकेवली **मूल 4** **उत्तर प्रकृति 12**

औदारिकद्विक (औदारिकशरीर औदारिक अंगो– पांग) अस्थिरद्विक (अस्थिरनाम, अशुभनाम), खगतिद्विक (शुभविहायोगति, अशुभविहायोगति) प्रत्येकत्रिक (प्रत्येकनाम, शुभनाम, स्थिरनाम) संस्थानषट्क (समुचतुरस्त्र, न्यग्रोध, सादि, वामन, कुब्ज, हुंड)

अगुरुलघुचतुष्क (अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास नाम) वर्णचतुष्क (वर्ण गन्ध, रस, स्पर्श) निर्माणनाम, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, वज्रऋषभनाराचसंहनन दुस्वर, सुस्वर, साता या असातावेदनीय में से कोई एक, ये 30 प्रकृतियाँ तेरहवें गुणस्थान के अन्तिम समय तक ही उदय को पा सकती है। अतः इनको घटाने पर शेष 42–30 = 12 प्रकृतियाँ चौदहवें गुणस्थान में रहती हैं। शेष जिन 12 प्रकृतियों का उदय चौदहवें गुणस्थान के अन्तिम समय तक रहता है, वे इस प्रकार हैं–

सुभगनाम, आदेयनाम, यशःकीर्तिनाम, साता– असाता वेदनीय में से कोई एक, त्रसत्रिक (त्रसनाम, बादरनाम, पर्याप्तनाम) पंचेन्द्रिय जाति, मनुष्यायु, मनुष्यगति, तीर्थंकरनाम, उच्चगोत्र = 12

****

उदय द्वार सम्बन्धी ज्ञातव्य

उदय द्वार—

आत्मा के साथ बन्धे हुए कर्मदलिकों का नियत समय पर शुभाशुभ फलों का अनुभव कराना उदय है। अनुभव जन्य विपाक उदय का ही यहाँ ग्रहण है, प्रदेश उदय का ग्रहण यहाँ इष्ट नहीं है।

कर्मों का शुभाशुभ फल मूल कर्मों की प्रकृति एवं स्वभाव के अनुसार होता है, अन्य कर्म के स्वभावानुसार नहीं। चूँकि अध्यवसाय विशेष से कर्म की उत्तर प्रकृति अन्य उत्तर प्रकृति के रूप में बदल सकती है। अतः फल अन्य उत्तर प्रकृति के स्वभावानुसार ही प्राप्त होगा।

दर्शन मोहनीय का चारित्र मोहनीय के रूप में, चारित्र मोहनीय का दर्शन मोहनीय के रूप में एवं एक आयु का दूसरी आयु के रूप में फल प्राप्त नहीं होता है।

उदय योग्य प्रकृतियों की विवक्षा औधिक रूप से (सामान्य रूप से)—

कुल 148 प्रकृतियों में से 26 प्रकृतियों का उदय होता ही नहीं है। 20 वर्णादि में से एक समय में एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और एक स्पर्श, इस प्रकार चार वर्णादि का उदय माना गया है। 5 बन्धन, 5 संघातन का उदय शरीर के उदय में सम्मिलित हो जाने के कारण अलग से इनका उदय नहीं माना गया है।

ज्ञातव्य—

1. आहारक द्विक का उदय संयतों को प्रमत्त अवस्था में ही सम्भव है। तीर्थंकर नामकर्म का उदय तीर्थंकर नामकर्म को बाँधे हुए जीव के केवलज्ञान के पश्चात् तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थान में ही होता है।
2. अपर्याप्त अवस्था 1, 2, 4 गुणस्थान में सम्भव हैं किन्तु अपर्याप्त नामकर्म का उदय पहले गुणस्थान में ही माना गया है। इसका कारण यह है कि अपर्याप्त नामकर्म से तात्पर्य अवस्था विशेष से नहीं होकर अपर्याप्त नामकर्म के बन्ध/उदय से है। अपर्याप्त नामकर्म का उदय रहने पर निश्चित अपर्याप्त अवस्था में ही जीव काल करता है। अपर्याप्त अवस्था में काल करने वाला (भगवती सूत्रानुसार) नियमा मिथ्यादृष्टि होता है।
3. किसी भी आनुपूर्वी का उदय बाटे बहती अवस्था में अपर्याप्त अवस्था में ही होता है। अतः आनुपूर्वी का उदय 1, 2, 4 गुणस्थान में ही होगा।
4. दूसरे गुणस्थान में काल करने वाला नरक गति में नहीं जाता है। अतः दूसरे गुणस्थान में नरकानुपूर्वी का उदय नहीं होता है। दूसरे गुणस्थान में नरकानुपूर्वी का उदय नहीं होने का अर्थ यह है कि जीव चाहे वक्रगति से जाये, चाहे ऋजुगति से जाये, दोनों ही अवस्था में दूसरे गुणस्थान वाला जीव नरक में उत्पन्न नहीं होता है।
5. मिथ्यात्व मोह का उदय पहले गुणस्थान में, मिश्र मोहनीय का उदय तीसरे गुणस्थान में नियमा होता है। समकित मोहनीय का उदय क्षयोपशम समकित में होता है। क्षयोपशम समकिती के चौथे से सातवें गुणस्थान में समकित मोहनीय का उदय नियमा होता है।
6. कर्मग्रन्थकार प्रत्येक शरीरी स्थावरों में (बादर पृथ्वी, पानी, वनस्पति में) दूसरा गुणस्थान भी मानते हैं। इसलिए स्थावर नाम एवं एकेन्द्रिय जाति का उदय दूसरे गुणस्थान तक माना है। कर्मग्रन्थकार दूसरे गुणस्थान को एकान्त मिथ्यात्वी मानते हैं। अतः दूसरा गुणस्थान मानने पर भी स्थावरों में एक मिथ्यादृष्टि तथा दो अज्ञान ही मानते हैं।

7. तीसरे से लेकर चौदहवें तक के सभी गुणस्थान संज्ञी पंचेन्द्रिय के पर्याप्तकों में ही होते हैं। तीसरा गुणस्थान अपर्याप्त अवस्था में प्राप्त नहीं होता है।

8. अनन्तानुबन्धी का उदय दूसरे गुणस्थान तक, अप्रत्याख्यानी का उदय चौथे गुणस्थान तक, प्रत्याख्यानावरण का उदय पाँचवें गुणस्थान तक ही होता है। संज्वलन त्रिक का उदय नवमें गुणस्थान तक तथा संज्वलन लोभ का उदय दसवें गुणस्थान तक होता है। सूक्ष्मता सिर्फ संज्वलन लोभ में ही सम्भव है।

9. नारकी एवं देवता में प्रथम चार गुणस्थान ही होते हैं। अतः वैक्रिय से सम्बन्धित उदय चौथे गुणस्थान तक ही माना है। (यहाँ मनुष्य एवं तिर्यञ्च की वैक्रिय लब्धि भव प्रत्यय नहीं होने से उसकी विवक्षा नहीं है)।

10. तिर्यञ्च में गुणस्थान पहले से पाँचवें तक होते हैं। उद्योत प्रकृति एवं नीच गोत्र का सम्बन्ध प्रमुखतः तिर्यञ्च से मानकर इन प्रकृतियों का उदय भी पाँचवें गुणस्थान तक ही माना गया है। (लब्धि वाले देवता एवं संयति में भी उद्योत का उदय हो सकता है, किन्तु यहाँ उसकी विवक्षा नहीं है)।

11. निद्रा–निद्रा, प्रचला–प्रचला एवं स्त्यानर्द्धि का उदय छठे गुणस्थान तक ही होता है, किन्तु इन तीनों प्रकृतियों का उदय नारकी व देवताओं में नहीं होता है।

12. अन्तिम तीन अशुभ संहनन वाले उपशम श्रेणि नहीं कर सकते। अतः इन तीन संहनन में गुणस्थान पहले से सातवें तक ही माना है। क्षपक श्रेणि वज्रऋषभनाराच संहनन वाले ही कर सकते हैं। उपशम श्रेणि प्रथम तीन संहनन वाले साधु कर सकते हैं, अतः वज्रऋषभ नाराच संहनन में गुणस्थान एक से तेरह तथा ऋषभनाराच एवं नाराच संहनन में गुणस्थान पहले से ग्यारहवें तक माने गये हैं।

13. सवेदी में गुणस्थान पहले से नवमें तक तथा अवेदी में गुणस्थान नवमें से चौदहवें तक होते हैं अर्थात् नवमें गुणस्थान के प्रारम्भ में जीव सवेदी रहता है तथा बाद में अवेदी बन जाता है।

14. मोहनीय कर्म का उदय दसवें गुणस्थान तक तथा शेष तीन घाति कर्मों का उदय बारहवें गुणस्थान तक होता है।

15. आतप नामकर्म का उदय बादर पृथ्वीकाय के पर्याप्त को (सूर्य विमान में जहाँ से किरणें निकलती हैं, उस रवि बिम्ब में) होता है। अतः प्रथम गुणस्थान में ही आतप नामकर्म का उदय सम्भव है।

****

उदीरणा–विवरण

ओघ (सामान्य) **मूलप्रकृति 8** **उत्तर प्रकृति 122**

उदययोग्य के अनुसार

1. मिथ्यात्व **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 117**

मिश्रमोहनीय, सम्यक्त्वमोहनीय, आहारकद्विक व तीर्थंकरनाम की उदीरणा सम्भव नहीं होने से 5 प्रकृतियाँ कम हुई।

2. सास्वादन **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 111**

उदय के समान समझना।

3. मिश्र **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 100**

उदयवत् 12 प्रकृतियों की उदीरणा तो सम्भव नहीं, किन्तु मिश्रमोहनीय की उदीरणा सम्भव है।

4. अविरतसम्यग्दृष्टि **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 104**

मिश्रमोहनीय की उदीरणा सम्भव नहीं। सम्यक्त्वमोहनीय व चार आनुपूर्वी की उदीरणा सम्भव है। अतः 100+5–1 = 104।

5. देशविरत **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 87**

उदयवत् 17 प्रकृतियों की उदीरणा सम्भव है।

6. प्रमत्तविरत **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 81**

उदयवत् सम्भव है।

7. अप्रमत्तविरत **मूल 6** **उत्तर प्रकृति 73**

वेदनीयद्विक (साता, असाता) आहारकद्विक, स्त्यानर्द्धित्रिक, मनुष्यायु = 8, छठे गुणस्थान के अन्तिम समय में इन आठ प्रकृतियों की उदीरणा रुक जाने से 81–8 = 73 की उदीरणा सम्भव है।

नोट– छठे गुणस्थान से आगे ऐसे अध्यवसाय नहीं होते, जिससे साता, असाता वेदनीय, मनुष्यायु की उदीरणा हो सकें। अतः उदय की अपेक्षा ये तीन कर्म प्रकृतियाँ कम गिनी हैं।

8. अपूर्वकरण **मूल 6** **उत्तर प्रकृति 69**

सम्यक्त्वमोहनीय, अर्धनाराचसंहनन, कीलिका– संहनन, सेवार्तसंहनन इन चार प्रकृतियों की उदीरणा सम्भव नहीं।

9. अनिवृत्तिबादर **मूल 6** **उत्तर प्रकृति 63**

हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा = 6 की उदीरणा सम्भव नहीं हैं।

10. सूक्ष्मसंपराय **मूल 6** **उत्तर प्रकृति 57**

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया = 6 की उदीरणा सम्भव नहीं है।

11. उपशांतमोह **मूल 5** **उत्तर प्रकृति 56**

संज्वलन लोभ की उदीरणा नहीं होती।

12. क्षीणमोह **मूल 5** **उत्तर प्रकृति 54**

ऋषभनाराच व नाराच संहनन, क्षपकश्रेणि आरूढ़ के नहीं होते। 56–2 = 54

अन्त समय के आगे निद्रा, प्रचला की उदीरणा सम्भव नहीं। अतः 54–2 = 52

13. सयोगिकेवली **मूल 2** **उत्तर प्रकृति 39**

ज्ञानावरणीय–5, दर्शनावरणीय–4, अन्तराय–5 = 14 प्रकृतियाँ इस गुणस्थान में न रहने से उदीरणा सम्भव नहीं, तथा तीर्थंकरनाम जोड़ देने से 52–14+1 = 39 प्रकृतियों की उदीरणा सम्भव है।

14. अयोगिकेवली

किसी कर्म की उदीरणा नहीं होती है।

****

उदीरणा द्वार सम्बन्धी ज्ञातव्य

उदीरणा—

कर्मदलिकों को प्रयत्न विशेष से खींचकर नियत समय से पहले ही उदयावलिका में लाकर उनके शुभाशुभ फलों को भोगना उदीरणा है।

ज्ञातव्य—

उदीरणा के लिए तीन बातें होना अनिवार्य हैं :—

1. उदीरणा योग्य कर्म–प्रकृति का विपाकोदय चालू हो।
2. उस कर्म–प्रकृति की स्थिति एक आवलिका से अधिक हो।
3. योगों की प्रवृत्ति विद्यमान हो।

ये तीनों बातें होने पर भी उदीरणा होना अनिवार्य नहीं है क्योंकि उदीरणा योग्य परिणाम/अध्यवसाय न होने पर भी उस–उस कर्म–प्रकृति की उदीरणा नहीं हो पाती। किन्तु उदीरणा जब भी होगी तो ये तीनों बातें अवश्य विद्यमान रहेंगी।

सातावेदनीय, असाता वेदनीय एवं मनुष्य आयु इन तीन प्रकृतियों की उदीरणा प्रमाद अवस्था में ही होती है। इस कारण से अप्रमत्त आदि गुणस्थानों में इन तीन प्रकृतियों की उदीरणा नहीं होती है।

****

सत्ता–विवरण

ओघ (सामान्य) **मूल प्रकृति 8** **उत्तर प्रकृति 148**

ज्ञानावरणीय–5, दर्शनावरणीय–9, वेदनीय–2, मोहनीय–28, आयु–4, नाम–93, (पिण्ड प्रकृति–65, प्रत्येक–8, त्रसदशक–10 , स्थावरदशक–10 = 93) गोत्र–2, अन्तराय–5.

1. मिथ्यात्व **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 148**

जिस जीव ने पहले नरकायु का बन्ध कर लिया हो, व फिर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व पाकर उसके बल से जिननामकर्म बाँध लिया हो, वह जीव नरक में जाते समय सम्यक्त्व को त्यागकर मिथ्यात्व को अवश्य ही प्राप्त करता है, परन्तु तीर्थंकरनामकर्म की सत्ता तो इस गुणस्थान में है, अतः इस गुणस्थान में 148 प्रकृतियों की सत्ता है।

(योग्यता की अपेक्षा से)

2. सास्वादन **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 147**

कोई भी जीव तीर्थंकरनामकर्म बाँधकर सास्वादन गुणस्थान प्राप्त नहीं करता है। अतः दूसरे गुणस्थान में जिननामकर्म की सत्ता नहीं होती है।

3. मिश्र **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 147**

दूसरे गुणस्थान के समान

4. अविरतसम्यग्दृष्टि **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 148,145,141,138**

(क) सम्भवसत्ता की अपेक्षा से यद्यपि किसी एक समय में किसी एक जीव को दो आयु से अधिक की सत्ता नहीं होती, परन्तु योग्य सामग्री मिलने पर जो कर्म विद्यमान नहीं हैं, उनका भी बन्ध व सत्ता हो सकती है। अतः योग्यता की अपेक्षा से 148 (औपशमिक सम्यक्त्वी, क्षायोपशमिक सम्यक्त्वी, अचरमशरीरी की अपेक्षा से)

(ख) चरमशरीरी उपशम, क्षयोपशम समकिती चतुर्थ गुणस्थानवर्ती के तीन आयु की सत्ता न रहने से 145 प्रकृति।

(ग) क्षायिक सम्यक्त्वी, अचरमशरीरी के अनन्तानुबन्धी चतुष्क व दर्शनत्रिक की सत्ता नहीं रहती, अतः 148–7=141 प्रकृति।

(घ) चरमशरीरी की अपेक्षा से (क्षायिक– सम्यक्त्वी) अनन्तानुबन्धी 4, दर्शनत्रिक 3, आयु 3 के कम करने पर 138 प्रकृति की।

5. देशविरत **मूल 8** **उत्तर प्रकृति चौथे गुणस्थान के समान**

क वत् 148
ख वत् 145
ग वत् 141
घ वत् 138

6. प्रमत्तविरत **मूल 8** **उत्तर प्रकृति चौथे गुणस्थान के समान**

क वत् 148
ख वत् 145

ग वत् 141
घ वत् 138

7. अप्रमत्तविरत **मूल 8** **उत्तर प्रकृति चौथे गुणस्थान के समान**

क वत् 148
ख वत् 145
ग वत् 141
घ वत् 138

8. अपूर्वकरण **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 148,142,139,138**

सम्भवसत्ता की अपेक्षा से (योग्यता से) 148, अनन्तानुबन्धी व नरकायु, तिर्यंचायु वाला उपशमश्रेणि नहीं कर सकता, इस अपेक्षा से 142, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, दर्शनत्रिक, नरक व तिर्यंचायु इन 9 प्रकृतियों को कम करने से 139 (क्षायिक समकिती उपशम श्रेणी वाले की अपेक्षा)

(पंच संग्रह में कहा है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्क की विसंयोजना बिना जीव उपशमश्रेणि पर आरूढ़ नहीं हो सकता। सर्वमत है कि नरक व तिर्यंच आयुकर्म की सत्ता वाला उपशमश्रेणि नहीं चढ़ सकता।)

घ वत् 138

9. अनिवृत्तिकरण **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 148 (अन्तिम 103)**

सम्भवसत्ता की अपेक्षा 148

उपशमश्रेणि में अनन्तानुबन्धीचतुष्क और नरक– तिर्यंचायु की सत्ता न रहने पर 148–6 = 142

उपशमश्रेणि में– अनन्तानुबन्धीचतुष्क दर्शनत्रिक व नरक तिर्यंचायु का अभाव होने से 148–9 = 139

क्षपकश्रेणि में–

भाग 1 में– अनन्तानुबन्धी 4, दर्शनत्रिक, आयु तीन की सत्ता न रहने से। 148– 10 = 138

भाग 2 में– स्थावरद्विक, तिर्यंचद्विक, नरकद्विक आतप, उद्योत, स्त्यानर्द्धित्रिक, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रियत्रिक, साधारण नामकर्म की सत्ता नहीं रहती 138–16 = 122

भाग 3 में– दूसरे भाग के अन्त में अप्रत्याख्या– नावरणचतुष्क, प्रत्याख्यानावरण– चतुष्क की सत्ता क्षय हो जाती है। 122–8 = 114

भाग 4 में– तीसरे भाग के अन्त में नपुंसकवेद का क्षय हो जाने से। 114–1 = 113

भाग 5 में– चौथे भाग के अन्त में स्त्रीवेद का क्षय हो जाने से। 113–1 = 112

भाग 6 में– पाँचवें भाग के अन्त में हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा का क्षय होने से। 112–6 = 106

भाग 7 में– छठे भाग के अन्तसमय में पुरुषवेद का क्षय होने से 106–1 = 105

भाग 8 में– सातवें भाग के अन्त में संज्वलन क्रोध का क्षय होने से 105–1 = 104

भाग 9 में– आठवें भाग के अन्त में संज्वलन मान का क्षय होने से 104–1 = 103 नौंवें भाग के अन्त में संज्वलन माया का क्षय होने से 102 प्रकृतियाँ जो 10वें गुणस्थान की सत्ता है।

10. सूक्ष्मसंपराय **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 148; अन्तिम 102**

सम्भवसत्ता की अपेक्षा 148

उपशमश्रेणि में अनन्तानुबन्धी चतुष्क (विसंयोजना से) व नरक तिर्यंचायु को कम करने से 148–6 = 142

उपशमश्रेणि में– (नौंवें गुणस्थानवत्) 139

क्षपकश्रेणि में– 102; दसवें गुणस्थान के अन्तिम समय में संज्वलन लोभ का क्षय होने से शेष रही 101 प्रकृतियाँ जो बारहवें गुणस्थान के प्रथम समय में हैं।

11. उपशान्तमोह **मूल 8** **उत्तर प्रकृति 148, 142, 138**

सम्भवसत्ता की अपेक्षा 148

उपशमश्रेणि में अनन्तानुबन्धीचतुष्क व नरकायु, तिर्यंचायु घटाने से 148–6 = 142

उपशमश्रेणि में 138

(इस गुणस्थान में क्षपकश्रेणि नहीं होती है।)

12. क्षीणमोह **मूल 7** **उत्तर प्रकृति 101**

द्विचरम समय में निद्रा व प्रचला का क्षय होने से 101–2 = 99

अन्तिम समय में ज्ञानावरण–5, दर्शनावरण–4 और अन्तराय–5 का क्षय होने से 99–14 = 85, जो तेरहवें गुणस्थान की सत्ता प्रकृतियाँ हैं। (इस गुणस्थान में उपशमश्रेणि नहीं होती।)

13. सयोगिकेवली **मूल 4** **उत्तर प्रकृति 85**

85 प्रकृतियाँ, इस तेरहवें गुणस्थान में 85 प्रकृतियों में से किसी भी प्रकृति की सत्ता समाप्त नहीं होती है।

14. अयोगिकेवली **मूल 4** **उत्तर प्रकृति 12/13**

चौदहवें गुणस्थान के द्विचरम समय पर्यन्त जो 85 प्रकृतियों की सत्ता रहती है उसमें से द्विचरम समय में–

देवद्विक, विहायोगतिद्विक, गन्धद्विक, स्पर्श–8, वर्ण–5, रस–5, शरीरनाम–5, बन्धननाम–5, संघातननाम–5, निर्माणनाम, संहनन–6, अस्थिरषटक्, संस्थान 6, अगुरुलघुचतुष्क, अपर्याप्तनाम, साता या असातावेदनीय, प्रत्येकत्रिक, अंगोपांग 3, सुस्वरनाम, नीच गोत्र = 72, प्रकृतियों की सत्ता का अभाव हो जाता है।

चौदहवें गुणस्थान के अन्तिम समय में– मनुष्यत्रिक, त्रसत्रिक, यश:कीर्तिनाम, आदेयनाम, सुभग, तीर्थंकरनाम, उच्चगोत्र, पंचेन्द्रियजाति, साता या असातावेदनीय में से कोई एक, इन 13 प्रकृतियों का अभाव हो जाने से आत्मा मुक्त हो जाती है।

****

सत्ता द्वार सम्बन्धी ज्ञातव्य

सत्ता—

कर्म परमाणुओं का अवस्थान, सद्भाव, विद्यमानता सत्ता कहलाती है। कर्म पुद्गलों का अपने स्वरूप में आत्मा के साथ लगे रहना सत्ता है। कोई भी कर्म जिस समय बँधता है या संक्रमित होता है, उसी समय से सत्ता आ जाती है। सत्ता के दो भेद हैं— (1) सद्भाव सत्ता, (2) सम्भव सत्ता।

सद्भाव सत्ता— अमुक समय में प्रकृतियों की सत्ता का विद्यमान रहना, सद्भाव सत्ता है।

सम्भव सत्ता— अमुक समय में प्रकृतियों की सत्ता का विद्यमान नहीं रहना, किन्तु भविष्य में उस सत्ता की सम्भावना होना, सम्भव सत्ता है।

ज्ञातव्य—

1. प्रकृति के क्षय से, विसंयोजना से, उद्वेलना से अथवा सर्व संक्रमण से प्रकृति की सत्ता समाप्त हो जाती है।
2. 148 की सत्ता योग्यता की अपेक्षा से है अर्थात् सम्भव सत्ता है।
3. जिननाम की सत्ता सास्वादन एवं मिश्र गुणस्थान वालों को प्राप्त नहीं होती।
4. चौथे से लेकर आगे के गुणस्थानों में वर्तमान जीवों के अध्यवसाय विशुद्धतर होने से कर्मप्रकृतियों की सत्ता कम होती जाती है।
5. प्रथम गुणस्थान में कोई–कोई जीव समकित मोहनीय व मिश्र मोहनीय, इन दोनों प्रकृतियों की उद्वेलना करके, इन दोनों प्रकृतियों के दलिकों को मिथ्यात्व मोहनीय में संक्रमित कर देता है, जिससे इन दोनों प्रकृतियों की सत्ता अस्थायी रूप से समाप्त हो जाती है। जेसे ही वह जीव पुनः समकित प्राप्ति की प्रक्रिया करता है तो पुनः त्रिपुंज कर लेने के कारण समकित मोहनीय व मिश्र मोहनीय पुनः सत्ता में आ जाती है।
6. चौथे से सातवें गुणस्थान में दर्शन सप्तक के अलावा अन्य किसी भी प्रकृति की सत्ता समाप्त नहीं होती है। दर्शन सप्तक में से भी सबसे पहले अनन्तानुबन्धी चतुष्क की, उसके बाद मिथ्यात्व मोहनीय की, उसके बाद मिश्र मोहनीय की सत्ता समाप्त होती है। इन छह प्रकृतियों की सत्ता 15 कर्मभूमिज पर्याप्तक मनुष्य ही समाप्त कर पाते हैं और 6 का क्षय 1 का वेदन इस भंग को प्राप्त कर लेते हैं। अन्तर्मुहूर्त्त बाद समकित मोहनीय के वेदन को भी समाप्त कर सातों का क्षय कर क्षायिक समकित प्राप्त कर लेते हैं। यदि कोई पूर्व बद्धायु हो तो 6 का क्षय 1 का वेदन इस भंग में रहते काल कर सकते हैं तथा बद्धायु के अनुसार उत्पन्न होकर वहाँ अपर्याप्त अवस्था में शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने के पहले–पहले समकित मोहनीय का भी क्षय करके क्षायिक समकित प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् समकित मोहनीय की सत्ता चारों गति के अपर्याप्तक जीव समाप्त कर सकते हैं।
7. पहले, दूसरे, तीसरे, आठवें, ग्यारहवें तथा तेरहवें गुणस्थान में किसी भी कर्म प्रकृति की सत्ता समाप्त नहीं होती है।

निबन्ध विभाग–

स्थानकवासी परम्परा और उसकी मौलिक मान्यताएँ

संसार के प्राणिमात्र के सच्चे त्राता, विश्वबन्धु, करुणा सिन्धु, श्रमण भगवान महावीर ने सम्पूर्ण जगत् के प्राणियों के हित की साधना के लिए विश्वधर्म – जैनधर्म का श्रमण, श्रमणी, श्रावक, श्राविका रूपी चतुर्विध तीर्थ के आचार, विचार एवं व्यवहार का स्वरूप बताया, प्राणिमात्र के प्राणों की रक्षा–दया को ही धर्म का प्राण बतलाया।

धर्म, प्राकृतिक नियम Law of Nature सार्वभौमिक, सार्वदेशिक, सार्वकालिक व सार्वजनीन होता है। समय–समय पर इन्हीं नियमों की अनुपालना से बन्धनों के मूल–राग–द्वेष को समाप्त करने वाले आप्त पुरुष इन सिद्धान्तों की प्ररुपणा करते हैं। राग–द्वेष की ग्रन्थि से रहित होने से वे निर्ग्रन्थ कहलाते हैं और उनके द्वारा प्ररुपित धर्म–निर्ग्रन्थ–धर्म कहलाता है। सर्वप्रथम नाम यही था, कालक्रम से अनेक नाम प्राप्त हुए, जिनमें प्रमुख नाम इस प्रकार हैं :–

निर्ग्रन्थ धर्म : निर्ग्रन्थों द्वारा प्ररुपित।

जैन धर्म : जिन भगवन्तों द्वारा उपदिष्ट।

सुविहित परम्परा : आगम मर्यादानुसार।

लोंकागच्छ : लोंकाशाह द्वारा क्रियोद्धारक।

सनातनी धर्म : जैन धर्म के शुद्ध आचार पक्ष को रखा।

ढूँढिया : प्रारम्भ में मुनिराज ढूँढों (पुराने मकान) में ठहरे।

साधुमार्गी : साधु मर्यादा को सम्यक् रूप से स्थापित किया।

बाईस टोला : संवत् 1772 में पूज्यपाद आचार्य प्रवर श्री धर्मदासजी के 22 टोलों में विचरण।

स्थानकवासी : विक्रम की 19वीं शताब्दी के अन्त में।

भगवान महावीर की विशुद्ध परम्परा निर्ग्रन्थ, श्रमण, सुविहित, वनवासी, वसतिवासी आदि विविध रूपों को पार करती हुई समय के प्रभाव से स्थानकवासी के नाम से पुकारी जाने लगी।

'स्थानक' शब्द का अर्थ बहुत व्यापक और उत्कृष्ट उद्देश्यों का द्योतक रहा है। यह पौषध, संवर, सामायिक आदि धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न करने का स्थान है। स्थानक में वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि इन्द्रिय–पोषक विषयों का स्थान न होने से वैराग्य की ओर प्रवृत्त कराने वाली और संसार तारक क्रियाएँ सुगमता–पूर्वक शुद्ध रूप में होती हैं।

छः काय के जीवों की विराधना टालकर धार्मिक अनुष्ठान को सम्पन्न कराने का स्थान स्थानक है। सावद्य क्रियाओं अर्थात् पाप व हिंसक प्रवृत्तियों का त्याग कर धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न कराने, मन को अन्तर्मुखी बनाने तथा निवृत्ति मार्ग की ओर उन्मुख करने का स्थान भी 'स्थानक' है।

स्थीयते अस्मिन्नितिस्थानम्। स्थानमेवेति-स्थानकम्।

स्थानके वसति तच्छील इति 'स्थानकवासी'।

शान्त, एकान्त तथा आगमवर्णित दोषों से रहित शुद्ध स्थान में धार्मिक क्रियाएँ करने से और वहाँ निवास करने से स्थानकवासी कहे जाते हैं। जैन दर्शन की अनेक परम्पराएँ वर्तमान में देखने को मिलती हैं।

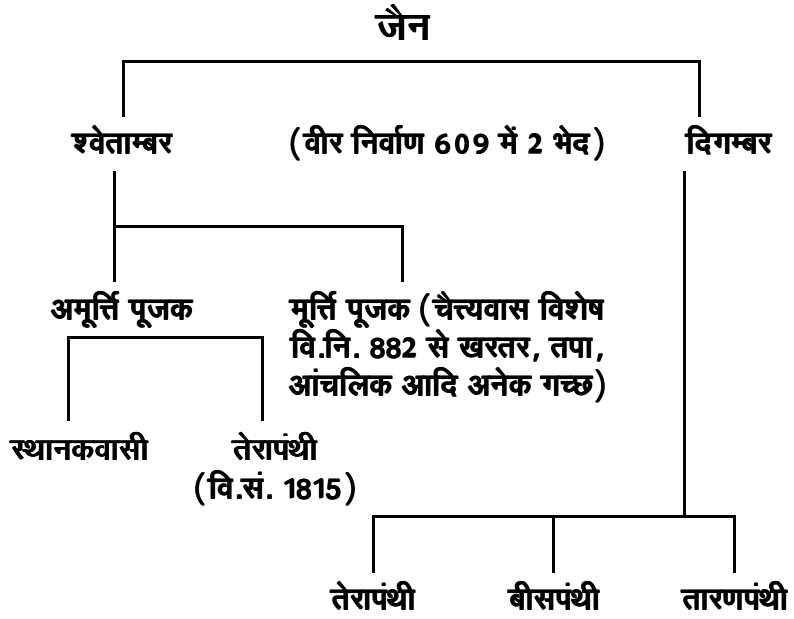

सैद्धान्तिक आधार पर अनेक मान्यताएँ सभी में समान हैं। द्रव्य, तत्त्व, गति, जाति, दंडक, लेश्या, योग, उपयोग, कर्म, सिद्धि, आदि बातों के साथ, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि निरवद्य साधना द्वारा मोक्ष–प्राप्ति के मूलभूत सिद्धान्तों में समानता है। साथ ही काल के प्रभाव से समाविष्ट विकृतियों से, अहंकृतियों से शाखा, प्रशाखा, भेद, प्रभेद होते चले गए।

हमें यहाँ उन विशिष्ट बिन्दुओं पर विचार करना है जो वीतराग दर्शन के आधारभूत सिद्धान्तों द्वारा मान्य होने के उपरान्त भी सर्वमत स्वीकृत नहीं रह पाए। इसलिए हम स्थानकवासी परम्परा की मान्यताओं के आधार पर इस परम्परा के वैशिष्ट्य को उजागर कर रहे हैं। वीतराग दर्शन विवेकपूर्ण उदार दर्शन है। स्वलिंग के साथ यहाँ अन्यलिंग व गृहस्थ लिंग से भी सिद्ध होना बताया गया, पर बाहर के भेद के बावजूद भीतर की कषाय–विजय की साधना में एकरूपता है। 'मित्ती मे सव्वभूएसु' के साथ यहाँ गुणिजनों पर प्रमोद–भाव कहा गया, इसी मैत्री–भाव की प्रतिक्षण वृद्धि कर शुद्ध परम्परा के प्रति प्रमोद की अभिव्यक्ति की जा रही है। विकृति पर प्रहार करना ही होगा। विकृति दोष है, पाप है, जड़ है, उससे अपने को बचाना ही होगा, पर विकृति–पक्ष का सेवन करने वालों के प्रति भी हितबुद्धि रखते हुए उनके आत्मोत्थान की मंगल मनीषा ही रखनी है।

श्वेताम्बर परम्परा के आचार्य एवं श्रमण–श्रमणी समूहों ने एकादशांगी (11 अंग) और अन्य आगमों को (उपांग, मूल, छेद) सर्वज्ञप्रणीत एवं गणधरों द्वारा ग्रथित बताते हुए उन्हें प्रामाणिक माना और उनमें जैन–धर्म के स्वरूप, सिद्धान्तों एवं श्रमणाचार आदि का जिस रूप में विवरण दिया गया है, उसे ही प्रामाणिक तथा आचरणीय माना। इसके विपरीत दिगम्बर परम्परा के आचार्यों, श्रमणों आदि ने यह अभिमत व्यक्त करते हुए कि एकादशांगी

विलुप्त हो गयी, एकादशांगी सहित सभी आगमों को अमान्य घोषित कर दिया। मूलतः इसी प्रश्न को लेकर भगवान महावीर का संघ दो भागों में विभक्त हो गया। दिगम्बर परम्परा की ओर से दिगम्बर अनुयायी ही आगम विलुप्त होने की बात कहते हैं। इसके साथ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि 'नष्टे मूले कुतो शाखा' अर्थात् मूल के नष्ट हो जाने पर वृक्ष की शाखा–प्रशाखाएँ किस प्रकार अस्तित्व में रह सकती हैं? श्वेताम्बर परम्परा पूर्ण रूप में आगमों को विलुप्त नहीं मानती।

एकादशांगी की विद्यमानता अथवा विच्छेद के सम्बन्ध में भी निष्पक्ष दृष्टिकोण से विचार करने की आवश्यकता है। श्वेताम्बर परम्परा की यह मान्यता एवं आस्था है कि एकादशांगी का कतिपय अंशों में ह्रास तो अवश्य हुआ है पर विच्छिन्न नहीं हुई है।

पूर्वज्ञान जैसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं अतिविशाल ज्ञान का क्रमिक ह्रास तो युक्तिसंगत एवं बुद्धिगम्य हो सकता है, किन्तु बिना किसी असाधारण परिस्थिति अथवा विप्लवकारी घटना के यह कहा जाय कि अन्तिम दस पूर्वधर के स्वर्गस्थ होते ही दस पूर्व का ज्ञान विलुप्त हो गया, यह बात स्थानकवासी परम्परा को मान्य नहीं है।

श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार– भगवान महावीर के मुखारविन्द से प्रकट हुई इस दिव्य ध्वनि– "गौतम! मेरा धर्मसंघ पंचम आरक के अन्तिम काल के अन्तिम दिन तक रहेगा।" के अनुसार सिद्ध होता है कि मूल श्रमण–परम्परा और जैन–धर्म का मूल स्वरूप, ये दोनों ही तीर्थ प्रवर्तन काल से आज तक अविच्छिन्न रूप से निरन्तर प्रवाहमान एक धारा के रूप में चले आ रहे हैं। ये दोनों इन विगत ढ़ाई हजार वर्षों की सुदीर्घावधि में गौण अथवा गुप्त अवश्य हुए, पर लुप्त कभी नहीं हुए।

दिगम्बर परम्परा की ओर से मुनियों के नग्न रहने के पक्ष में यह युक्ति प्रस्तुत की गई कि धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले तीर्थंकर स्वयं नग्न रहते थे, अतः श्रमण को भी निर्वस्त्र ही रहना चाहिए। श्वेताम्बर परम्परा में मुनियों के लिए वस्त्र, पात्र, मुखवस्त्रिका, रजोहरण आदि धार्मिक उपकरणों की आवश्यकता पर बल दिया गया है। अपनी इस बात की पुष्टि के लिए यह युक्ति प्रस्तुत की गई कि द्वादशांगी के प्रथम एवं प्रमुख अंग आचारांग में मुनियों को एक वस्त्र, दो वस्त्र अथवा तीन वस्त्र, पात्र आदि रखने तथा साध्वियों को चार वस्त्र रखने का विधान किया गया है। इस प्रकार धर्मोपकरणों का स्पष्ट उल्लेख आगमों में विद्यमान है।

दिगम्बरत्व के पक्ष की पुष्टि हेतु वस्त्र को मुक्ति प्राप्ति में बाधक तत्त्व बताकर 'स्त्रीणां न तद्भवे मोक्षः' इस सिद्धान्त की प्रतिष्ठापना का प्रयास किया गया, किन्तु स्थानकवासी परम्परा के अनुसार स्त्रियों में भी पुरुषों के ही समान अध्ययन, चिन्तन, मनन, तपश्चरण, संयमाराधन आदि सभी प्रकार की योग्यताएँ हैं। अतः "स्त्रीणां तद्भवे मोक्षः" यह सिद्धान्त सर्वमान्य होना चाहिए।

दिगम्बर परम्परा एकान्ततः जिनकल्प का, नग्नत्व का ही विधान मानते हैं। श्वेताम्बर परम्परा जम्बू स्वामी के मोक्षगमन के साथ जिनकल्प का विच्छेद मानती है। श्वेताम्बर स्थानकवासी परम्परा दशवैकालिक सूत्र के आधार पर (मुनियों के वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादपूँछन का उल्लेख देखकर) उपधिसहित मानते हैं। स्थानकवासी परम्परा में वस्तुतः किसी वस्तु पर ममत्व भाव रखना परिग्रह है, ऐसा भगवान महावीर ने कहा है।

"मुच्छा परिग्गहो वुत्तो" इइ वुत्तं महेसिणा।।

दशवैकालिक-6/21

एक वर्ग नग्न मूर्त्तियों की पूजा प्रतिष्ठा में विश्वास करता है तो दूसरा सवस्त्र मूर्त्तियों की पूजा प्रतिष्ठा में। दिगम्बर–मूर्त्ति आभूषण से रहित व बन्द आँखों वाली होती है, जबकि श्वेताम्बर–मूर्त्ति आभूषण से युक्त एवं खुली आँखों वाली होती है।

तीसरा वर्ग– **ध्यान धूपं मनः पुष्पं, पंचेन्द्रिय हुताशनम्।**
क्षमा जाप सन्तोष पूजा, पूजो देव निरंजनम्॥

यह वर्ग मूर्त्ति पूजा का मूलतः ही विरोध करता है। द्रव्य पूजा हिंसामूलक होने से अमान्य है। भावपूजा अहिंसामूलक होने से मान्य है। स्थानकवासी परम्परा निरंजन निराकार अध्यात्म–उपासना में ही विश्वास करती है।

श्वेताम्बर साधु–साध्वियों का जहाँ तक प्रश्न है, उनमें मूर्त्ति पूजा में विश्वास करने वाला वर्ग मुखवस्त्रिका मुँह पर नहीं रखता, हाथ में रखता है। मान्यता की दृष्टि से श्वेताम्बर संघ की सभी सम्प्रदायों ने मुखवस्त्रिका को उपकरण के रूप में मान्य किया है। इसी वर्ग का एक उपवर्ग केवल वस्त्र के अंचल (टुकड़े) को मुखवस्त्रिका के रूप में काम लेता है व हाथ में दण्ड रखता है।

इसके विपरीत स्थानकवासी साधु मुख पर मुखवस्त्रिका रखते हैं। रजोहरण, पात्र व पुस्तकादि के अतिरिक्त वृद्धावस्था आदि कारण को छोड़ सामान्यतः हाथ में दंड नहीं रखते।

जैन धर्म का भव्य भवन अहिंसा की आधारशिला पर अवस्थित है। आगमों में अहिंसा को संसार के समस्त प्राणिसमूह के लिए ममतामयी माँ की गोद, प्यासों के लिए पानी, भूखों के लिए भोजन और रोगियों के लिए औषधि से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बताया गया है। जब जिनालयों के निर्माण में सभी षड्जीवनिकायों का आरम्भ समारम्भ होता है तो वे जिनालय तीर्थंकरों द्वारा प्ररूपित कैसे हो सकते हैं?

जैन धर्म में, आगमों में धर्म के नाम पर, मुक्ति के नाम पर, स्वर्ग के नाम पर छोटी–बड़ी किसी भी प्रकार की हिंसा का प्रवेश कभी कोई व्यक्ति न कर बैठे, इसीलिए सर्वज्ञ सर्वदर्शी सभी तीर्थंकरों ने अपने–अपने धर्म–तीर्थ में सभी प्रकार की हिंसा के द्वार सदा–सदा के लिए बन्द करते हुए फरमाया है कि 'अपने जीवन की रक्षा, मान, सम्मान, पूजा, प्रतिष्ठा और यहाँ तक कि सभी प्रकार के सांसारिक दुःखों से सदा सर्वदा के लिए भी कोई मुमुक्षु किसी प्रकार की हिंसा न करे। जिन पृथ्वी, अप्, तैजस्, वायु एवं वनस्पति के एकेन्द्रिय स्थावर जीवों को उनके स्पर्श मात्र से मारणान्तिकी वेदना होती है, उन जीवों की कभी हिंसा न करे। क्यों कि इस प्रकार के स्थावर–एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा भी हिंसा करने वाले व्यक्ति के लिए अहितकर एवं अनन्तकाल तक, असह्य दारुण दुःखों से ओत–प्रोत संसार में भयावह भवाटवी में भटकाने वाली है।

अतः धर्म के नाम पर किसी भी हिंसा को स्थानकवासी परम्परा मान्य नहीं करती। धर्म कार्य के निष्पादन के लिए भी पाँच स्थावर काय में से किसी भी प्राणी की हिंसा करना हिंसा ही है।

लोंकाशाह जीवन चरित्र में स्वर्गीय मरुधर केसरीजी ने लिखा–

उपदेश अब देने लगे हैं, सिंह की सी नाद से।
श्रोता सहस्रों आ सुने, अति प्रेम से आह्लाद से॥
मूर्त्ति पूजा शास्त्र सम्मत, है नहीं सच मानिये।
अल्प से भी अल्प हिंसा, धर्म घातक जानिये॥

****

मौलिक मान्यताएँ

स्थानकवासी परम्परा की मौलिक मान्यताएँ इस प्रकार हैः–

(1) 32 आगम ही प्रमाण ग्रन्थ हैं–

तीर्थंकर भगवान केवलज्ञान के बाद अर्थरूप से देशना फरमाते हैं, जिसे सुनकर गणधर सूत्र रूप से रचना करते हैं, वे सूत्र, आगम कहलाते हैं। 10 पूर्वी तक की सारी रचनाएँ आगम हैं। 10 पूर्वी से 1 पूर्वी तक की वही रचना स्वीकार होगी जो आगम से विरोधी न हो। 1 पूर्वी के बाद के कोई ग्रन्थ आगम नहीं। वीर निर्वाण संवत् 1000 के बाद का कोई ग्रन्थ आगम रूप में मान्य नहीं है।

नन्दी सूत्र में अभिण्णदसपुव्विस्स सम्मसुअं, तेणं परं भिण्णेसु भयणा। सम्पूर्ण दस पूर्वधारी द्वारा रचित ग्रन्थ भी सम्यक् श्रुत ही होता है। उससे कम अर्थात् कुछ कम दस पूर्व और नव आदि पूर्व का ज्ञान होने पर विकल्प, अर्थात् सम्यक् श्रुत हो और न भी हो।

विक्रम संवत् 1084 दुर्लभराज वनराज चावड़ा की राजसभा, अणहिलपुरपट्टन में वर्धमान सूरि के शिष्य जिनेश्वर सूरि ने प्रश्न पूछा– 'राजन्! आप अपने बनाए मनमाने नियमों से राज्य का संचालन करते हो अथवा अपने पूर्वजों द्वारा निर्धारित रीति–नीति, मर्यादा, राजनीति के सिद्धान्तों से?' जब अपेक्षित उत्तर मिला तो चैत्यवासी परम्परा द्वारा रखी सभी दलीलों, तर्कों और छल–छद्मों को भस्मीभूत करके राजसभा में राजा ने मुहर–छाप लगा दी– 'ये खरे हैं, क्योंकि ये प्रभु द्वारा उपदिष्ट, पूर्वधरों द्वारा रचित आगम को प्रमाण मानकर उसी के अनुरूप साधना करते हैं। एक स्पष्ट विभाजन रेखा खींची गई– 32 आगम प्रमाण है तथा निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, अवचूर्णि और टीकाओं के वे अंश स्वीकार हैं जो आगम से विरोधी नहीं हैं। आगम विरुद्ध अंश अमान्य हैं।

आगम का बहुत बड़ा भाग लुप्त होने पर भी शेष उपलब्ध अंश जीवन का उद्धार करने में समर्थ है। अतः स्थानकवासी परम्परा शुद्ध परम्परा है।

कपोल कल्पित, स्वरचित, छद्मस्थ की वाणी में अनेक दूषण संभव हैं, जबकि आप्त वाणी निर्दोष होती है। अतः दोषरहित आगम मान्य करना सत्य–धर्म की पहचान है।

(2) सावद्य योग से विरत ही धर्म तीर्थ है–

भगवती सूत्र शतक 20 उद्देशक 8 में–

तित्थं पुण चाउव्वण्णाइण्णे समणसंघे, तं जहा–समणा समणीओ सावगा साविगाओ।

तीर्थ चार प्रकार के वर्णों (वर्गों) से युक्त श्रमणसंघ है। यथा– श्रमण, श्रमणियाँ, श्रावक और श्राविकाएँ। श्रमण–श्रमणियों में सर्व सावद्य योग का त्याग होता है। श्रावक–श्राविकाओं में सावद्य योग का अंशतः त्याग होता है।

तीर्थ– जिसके द्वारा तिरा जाय। अर्थात् जिसके द्वारा संसार समुद्र से तिरा जाय, वह तीर्थ है।

मागध, वरदाम, प्रभास आदि द्रव्य तीर्थों के नाम आगम में है, परन्तु शत्रुंजय, गिरनार आदि तीर्थों के द्वारा जीव को कोई विशेष उपलब्धि नहीं हो सकती।

भाव तीर्थ श्रेष्ठ होता है, उत्तम होता है। एक बार कर्म अथवा दोष निकलने पर संसार में घूमना नहीं पड़ता। आत्मोत्थान के लिए व्रतों को ग्रहण करना भाव तीर्थ है। अतः पानी (नदी आदि), वृक्ष, पर्वतादि तीर्थ नहीं। उनमें तिराने की क्षमता नहीं है।

भगवान के समवसरण में जाकर भी कितने ही जीव नहीं तिर सके, तब द्रव्य तीर्थ तो पूरी तरह निष्फल है। 18 पाप का त्यागी सावद्य योग से विरत धर्मतीर्थ है। तिरने का एक मात्र साधन पापों का त्याग है। अतः अग्नि, जल, वनस्पति आदि छः काय की हिंसा पाप है, संसार बढ़ाने वाली है, तिराने वाली नहीं।

(3) सर्व सावद्य योग से विरत ही वंदनीय पूजनीय होता है-

पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति का पालन करने वाले, छः काय के जीवों की रक्षा करने वाले, छः जीवनिकाय के जीवों का आरम्भ समारम्भ न करने वाले, न कराने वाले और न ही इस प्रकार का कार्य करने वाले का अनुमोदन करने वाले, मान-प्रतिष्ठा की भावना तथा आडम्बर से रहित जो आत्म-साधना में तल्लीन रहते हैं, ऐसे सर्व सावद्य योग से विरत ही वंदनीय-पूजनीय होते हैं। आगम में 'सुसाहुणो गुरुणो' अर्थात् समस्त सुसाधु मेरे गुरु हैं, ऐसा वर्णन आता है।

(दशवै. अध्ययन 6 में वर्णित) श्रमणाचार के अठारह स्थानों का यथावत् पालन करने वाले, साज शृंगार से रहित, जीवादि तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप के ज्ञाता, भगवान की आज्ञा में सदा रत रहने वाले छः काय के रक्षक, सावद्य योग से विरत ही वंदनीय-पूजनीय हैं।

सर्व जीव से मैत्री, द्वेष किसी से भी नहीं, किन्तु वंदनीय, पूजनीय, नमस्करणीय तो पाप के त्यागी ही हैं।

(4) जड़ पदार्थों में भगवद्दशा तो दूर सावद्य-योग के त्याग का आरोपण भी सम्भव नहीं-

भगवान सचेतन है, मूर्त्ति जड़ है। भगवान अरूपी है, मूर्त्ति रूपी है। जड़ अवन्दनीय है, भगवान वन्दनीय है। जिनेश्वर प्रभु इस जन्म-जरा-मृत्यु आदि अनन्त दुःखों से ओत-प्रोत संसार में कभी लौट कर नहीं आयेंगे तो फिर रत्न, स्वर्ण, रजत, कांस्य, पीतल, पत्थर आदि से निर्मित मूर्त्तियों में मन्त्रों द्वारा जिनेश्वर प्रभु का आह्वान कैसा? प्राण प्रतिष्ठा कैसी? क्या एकादशांगी में, निर्ग्रन्थ प्रवचन में एक भी ऐसा मन्त्र है, जिसे श्रमण भगवान महावीर ने सिद्ध क्षेत्र में विराजमान जिनेश्वरों को मूर्त्ति में आह्वान के लिए, मूर्त्ति में (उन जन्म-जरा-मृत्युंजयी अजन्मा जिनेश्वरों की) प्राण प्रतिष्ठा के लिए प्ररूपित किया हो? नहीं, क्योंकि एकादशांगी में एक भी ऐसा मन्त्र विद्यमान नहीं है।

प्रकाश तो सूर्य से ही होगा, सूर्य की मूर्त्ति से कदापि नहीं। मूर्त्ति सूर्य की है, पर अन्धकार पूर्ण गृह में रखी हुई है, उस दशा में उस सूर्य की मूर्त्ति के द्वारा दूसरों को प्रकाश दिये जाने की बात तो दूर उसके लिए स्वयं को प्रकाशित करना भी संभव नहीं हो सकेगा। उसको देखने के लिए सूर्य के प्रकाश की अथवा दीपक आदि किसी अन्य प्रकाश की अनिवार्य रूपेण आवश्यकता होगी।

अतः निरंजन, निराकार, अविकार, अजन्मा, अमूर्त्त जिनेश्वर भगवान का जड़ पदार्थों में आरोपण कैसा?

सार्वजनिक स्थल के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर अन्तिम संस्कार नहीं करना। चबूतरा, पगल्या नहीं। फोटो, कलैण्डर, लॉकेट आदि कोई भी वंदनीय-पूजनीय नहीं, क्योंकि जड़ में योग अथवा सावद्य-योग-त्याग का प्रश्न ही नहीं। सावद्य-योग-त्याग रूपी संवर तो सन्नी पंचेन्द्रिय कर्मभूमिज आर्य मनुष्य के अलावा कहीं भी सम्भव नहीं, फिर भगवद्दशा का तो कहना ही क्या?

कदाचित् कोई परिचय के रूप में प्रस्तुत करे तो प्रथम कक्षा का बालक तो Apple को देखकर 'A' पहचानता है। अनार देखकर 'अ' पहचानता है, पर B.A., M.A. के विद्यार्थी को उसकी आवश्यकता नहीं है।

जड़ को चेतन मानना, रूपी को अरूपी मानना, संसारी को मुक्त मानना आदि अनेक प्रकार के मिथ्यात्व भी लगने का प्रसंग होता है।

(5) 5 पद भाव निक्षेप की अपेक्षा ही है-

(अनुयोग द्वार में, तत्त्वार्थ सूत्र में) निक्षेप 4 प्रकार के बतलाये हैं- नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। भाव निक्षेप 2 प्रकार का है। (1) आगमतः, (2) नो आगमतः

शब्द के साथ भाव जुड़े वह आगमतः।प्रतिक्रमण, प्रतिलेखन आदि क्रियाएँ नो आगमतः।

अनुयोग द्वार सूत्र में आवश्यक पर निक्षेप के प्रसंग में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्य ध्वनित होता है- नाम, स्थापना के साथ द्रव्य आवश्यक में भी पूज्यता नहीं। पूरी तरह शुद्ध उच्चारण के साथ भी अनुपयोग है, अतः वहाँ 'जस्स' शब्द है- अर्थात् उसे सामान्य सम्बोधन मिला- अर्थात् भाव को ही प्रधानता दी गई।

द्रव्य, वेष व्यवहार में उपयोगी होता है। परमार्थतः पंच परमेष्ठी में गुणी-महापुरुषों का ही समावेश होता है।

परमेष्ठी शब्द ही स्पष्ट है- 'परमे भावे तिष्ठति असौ परमेष्ठी।' परम भाव में, आत्म-भाव में रहता है, जो शान्त है, वह सन्त है- अर्थात् जिसके कषाय के तीन चौक का उदय नहीं, सर्व सावद्य योग का त्याग है।

भाव की ही प्रधानता है। इसी शुद्ध मान्यता का निर्वहन करते हुए छठे गुणस्थान व उससे ऊपर आत्मभाव में लीन महापुरुषों को पंच परमेष्ठी में समाविष्ट किया है। अतः भाव निक्षेप की महत्ता स्पष्ट है।

वन्दनीय तो व्यक्ति गुणों से ही होता है। तीर्थंकर बनने वाली आत्मा भी तब ही वन्दनीय बनती है जब वह चारित्र गुण को धारण करती है। चारित्र के अभाव में चतुर्थ गुणस्थानवर्ती देव भी वन्दनीय नहीं होता, अतः भाव निक्षेप ही वन्दनीय है।

(6) मुखवस्त्रिका-

त्रिविध-गुण-संयुक्ता, लोके वै मुखवस्त्रिका।

प्रथमं जैन चिह्नं स्यात्, रक्षणं जीव-सूत्रयोः।।

मुखवस्त्रिका के प्रमुख तीन गुण इस प्रकार हैं :-

A. स्थानकवासी परम्परा की पहचान मुखवस्त्रिका से होती है, जो 16 अंगुल चौड़ी और 21 अंगुल लम्बी होती है। जीव-यतना के लिए डोरे सहित मुखवस्त्रिका मुख पर बाँधनी चाहिए।

B. नभ-चर जीव जो अनायास उड़कर खुले मुँह में गिर कर मर जाते हैं, ऐसे मक्खी, मच्छर आदि जीवों की मुखवस्त्रिका रक्षा करती है।

C. शास्त्रों का पठन-पाठन करते-करवाते समय मुख में से थूँक उछल कर न गिरे।

(7) स्थानकवासी परम्परा में जादू, टोना, यन्त्र, मन्त्र, आडम्बर, नित नये विधानों का प्रचलन, थोथे चमत्कारों एवं भौतिक प्रलोभनों को कोई स्थान नहीं है।

(8) स्वाध्याय, ध्यान, चिन्तन, मनन, स्तवन, आत्म–रमणरूपी भाव पूजा ही महत्त्वपूर्ण है।

(9) काल की बदली हुई परिस्थितियों में आगमसम्मत श्रमणाचार का पालन हो सकता है।

(10) दया–भाव से गरीबों को दान देना पाप नहीं है, अपितु पुण्य का कारण है।

(11) स्थानकवासी परम्परा सामायिक, स्वाध्याय और साधना पर विशेष रूप से आधारित है, मन्दिर आदि पर नहीं।

(12) स्थानकवासी परम्परा के अनुसार– 'आरम्भे णत्थि दया' आरम्भ में दया नहीं है। धर्म के नाम पर हिंसा को कोई स्थान नहीं है। सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। सब में हमारे समान आत्मा है। एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक किसी भी जीव की हिंसा न हो, इसका विशेष खयाल रखने का उपदेश भगवान ने शास्त्रों में स्थान–स्थान पर दिया है। अतः धर्म के नाम पर धूप, दीप, अगरबत्ती, सचित्त फूल, पानी आदि का उपयोग करना निषिद्ध है।

(13) यतना ही धर्म का प्राण है। इसलिए छह काय के जीवों की अहिंसा पालन में यतनावान् रहना। मन्दिर आदि बनाना, धूपादि देना, चँवर ढुलाना, नृत्यादि करना, फूल चढ़ाना आदि क्रियाएँ यतना को समाप्त करने वाली हैं।

आज जैन–धर्म संघ में प्रचलित सभी सम्प्रदाय, संघ अथवा आम्नाएँ अपनी–अपनी मान्यताओं को भगवान महावीर द्वारा प्ररुपित विशुद्ध धर्म का रूप मानते हैं। ऐसी स्थिति में श्रमण भगवान महावीर द्वारा अपने तीर्थ प्रवर्तन काल में प्ररुपित श्रमणाचार का एवं श्रावक–श्राविकाओं के आचार–विचार का मूल शुद्ध स्वरूप हो सकता है। इसका निर्णय भी आचारांग आदि आगमों के आधार पर ही करना चाहिए। आगमों में भगवान महावीर द्वारा प्रदर्शित धर्म के वास्तविक स्वरूप एवं आचार–विचार की कसौटी पर जो स्वरूप एवं आचार विचार खरा उतरे, वही वस्तुतः जैन धर्म का वास्तविक स्वरूप एवं श्रमणों आदि का विशुद्ध आचार विचार है।

यदि हम वास्तव में सच्चे ह्रदय से अपनी खोई हुई समृद्धि, प्रतिष्ठा और गौरव–गरिमा को पुनः प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें अपनी स्थानकवासी परम्परा का वास्तविक ज्ञान करना होगा। वह ज्ञान हमें अपने इतिहास के द्वारा प्राप्त होगा। क्योंकि इतिहास वह सीढ़ी है जो सदा ऊपर की ओर ही चढ़ाती है, वह कभी नीचे नहीं गिरने देती।

उन्नति के इस मूलमन्त्र को जैन–इतिहास वेत्ता, आगम मर्मज्ञ, युगप्रभावक, युगदृष्टा, युगमनीषी आचार्य भगवन् पूज्य श्री 1008 श्री हस्तीमलजी महाराज साहब ने अच्छी तरह अनुभव करने के पश्चात् **'जैन धर्म का मौलिक इतिहास'** के रूप में एक महान् सम्बल और अक्षय पाथेय हमें प्रदान किया है, जिसमें जीवन को समुन्नत बनाने वाले प्रशस्त मार्ग के साथ–साथ 'सत्यं शिवं सुंदरम्' के दर्शन होते हैं।

प्राकृत व्याकरण

पाठ-6

शब्द कोष

इकारांत पुल्लिंग शब्द

1. गिरि = पर्वत
2. अग्गि = आग
3. रवि = सूर्य
4. मुणि = मुनि
5. अरि = शत्रु
6. तवस्सि = तपस्वी
7. विहि = विधि
8. हरि = भगवान
9. णरवइ = राजा
10. इसि = ऋषि
11. समाहि = समाधि
12. पाणि = प्राणी
13. कवि = कवि

नोट :- गिरि से कवि तक के रूप गिरि की तरह चलते हैं।

क्रिया शब्द

1. घूम = घूमना
2. धाव = दौड़ना
3. हस = हँसना
4. पास = देखना
5. णच्च = नाचना
6. पडिक्कम = प्रतिक्रमण करना
7. सय = सोना
8. मर = मरना
9. रम = रमण करना
10. पड = पड़ना
11. लह = प्राप्त करना
12. रच = रचना
13. अच्च = पूजा करना
14. वय = बोलना

गिरि शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	गिरी	गिरिणो, गिरी
द्वितीया	गिरिं	गिरिणो, गिरी
तृतीया	गिरिणा	गिरीहि
चतुर्थी	गिरिस्स	गिरीण
पंचमी	गिरित्तो	गिरित्तो, गिरीसुन्तो
षष्ठी	गिरिस्स	गिरीणं
सप्तमी	गिरिम्मि	गिरीसु
संबोधन	हे गिरि	गिरिणो, गिरी

नोट :- कई विभक्तियों में एक से अधिक रूप बनते हैं, वे विस्तार से परिशिष्ट में दिए गए हैं।

तृतीया विभक्ति का प्रयोग—

अपने कार्य की सिद्धि में कर्ता जिसकी ज्यादा सहायता लेता है, उसे करण कहते हैं।

1. करण कारक में तृतीया विभक्ति होती है। से, के द्वारा अर्थ में तृतीया का प्रयोग किया जाता है।
2. साथ अर्थ में तृतीया होती है। जैसे सोहणो मोहणेण सह गच्छइ। सोहन मोहन के साथ जाता है।

भूतकाल के रूप—

भूतकाल अर्थ में अकारान्त धातुओं में 'ईअ' प्रत्यय लगता है। यह प्रत्यय सभी पुरुषों एवं सभी वचनों में लगता है। जैसे– चिंत+ईअ = चिंतीअ (चिंतन किया)। पठ + ईअ = पठीअ (पढा)

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
प्रथम	ईअ	ईअ
मध्यम	ईअ	ईअ
उत्तम	ईअ	ईअ

उदाहरण वाक्य—

1. अरी हसीअ। = शत्रु हँसा।
2. मुणी पडिक्कमीअ। = मुनि ने प्रतिक्रमण किया।
3. णरवई सयीअ। = राजा सोया।
4. मुणी समाहिं रमीअ। = मुनियों ने समाधि में रमण किया।
5. तवस्सी कविणा सह गच्छीअ।= तपस्वी कवि के साथ गया।

अभ्यास वाक्य—

हिन्दी से प्राकृत में अनुवाद कीजिए :-

1. समाधि से सुख प्राप्त किया।
2. प्राणी दौड़ा।
3. सूर्य को देखा।
4. साधू घूमे।

प्राकृत से हिन्दी में अनुवाद कीजिए :-

1. नरिंदा हसीअ।
2. अरिणो मरीअ।
3. मोहणो पडीअ।
4. गिरिणो पडीअ।
5. णरवई अरिणा सह ण गच्छीअ।
6. कविणा सह गच्छीअ।
7. विही संसारं रचीअ।

8. तवस्सी अच्चीअ।

9. इसिणो आगच्छीअ।

10.मुणी वयीअ।

पाठ-7

शब्द

1.	गुरु	=	गुरु	2. भाणु	= सूर्य
3.	साहु	=	साधु	4. वाउ	= हवा
5.	उच्छु	=	गन्ना	6. मच्चु	= मौत

क्रिया शब्द

1.	पा (पा)	=	पीना	2. ठा (स्था)	= ठहरना
3.	ण्हा (स्ना)	=	स्नान करना	4. झा (ध्या)	= ध्यान करना
5.	हो	=	होना	6. भास	= चमकना
7.	उल्लस	=	खुश होना	8. णम	= नमस्कार करना
9.	णच्च	=	नाचना	10. आगच्छ	= आना

अन्य शब्द— महुरं = मीठा

उकारान्त पुल्लिंग शब्दों के रूप—

साहु शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	साहू	साहुणो, साहू
द्वितीया	साहुं	साहुणो, साहू
तृतीया	साहुणा	साहूहि
चतुर्थी	साहुस्स	साहूण
पंचमी	साहुत्तो	साहूहिन्तो, साहुत्तो
षष्ठी	साहुस्स	साहूण
सप्तमी	साहुम्मि	साहूसु
संबोधन	साहू	साहुणो, साहू

नोट :- कई विभक्तियों में एक से अधिक रूप भी बनते हैं। जिनके विस्तृत रूप परिशिष्ट में देखे जा सकते हैं।

तृतीया विभिक्ति के नियम—

1. शरीर का जो अंग विकार से विकृत दिखाई पड़े उसमें तृतीया विभक्ति होती है। जैसे- नेत्तेण काणो = आँख से काणा।
2. आर्ष प्रयोगों में सप्तमी के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। जैसे- तेणं कालेणं, तेणं समएणं। उस काल, उस समय में।

भूतकाल के रूप—

अकारान्त के अलावा अन्य धातुओं में सभी पुरुषों में एवं वचनों में सी, ही, हीअ प्रत्यय लगते है। जैसे- सो ठासी = वह ठहरता है।

'ठा' धातु के भूतकाल के रूप

पुरुष	एकवचन	बहुवचन

प्रथम	ठासी, ठाही, ठाहीअ	ठासी, ठाही, ठाहीअ
मध्यम	ठासी, ठाही, ठाहीअ	ठासी, ठाही, ठाहीअ
उत्तम	ठासी, ठाही, ठाहीअ	ठासी, ठाही, ठाहीअ

भूतकाल में अस् धातु के आसी एवं अहेसि रूप बनते हैं।

उदाहरण वाक्य—

1. गुरू ठाही। = गुरु ठहरा।
2. मच्चू आगच्छीअ। = मृत्यु आयी।
3. साहू झाहीअ। = साधु ने ध्यान किया।
4. महू नेत्तेण काणो। = मधु आँख से काणा है।
5. तेणं कालेणं होहीअ। = उस काल में हुआ।

प्राकृत से हिन्दी में अनुवाद कीजिए :-

1. गुरू णमीअ।
2. साहू ठाही।
3. वाऊ गच्छीअ।
4. सो नेत्तेण काणो।
5. तेणं कालेणं सो हवीअ।
6. वयं आगच्छीअ।
7. साहूहि पठीअ।
8. तुमं हसीअ।
9. अहं ठाहीअ।
10. गुरू झासी।

प्राकृत में अनुवाद करें :-

1. सूर्य चमका।
2. गन्ना मीठा था।
3. गुरु खुश हुआ।
4. प्रभु ने स्नान किया।

पाठ–8

संज्ञा शब्द

माला	=	माला	छिहा	=	स्पृहा
हलिद्दा	=	हल्दी	मट्टिआ	=	मिट्टी
बाला	=	लड़की	लया	=	लता
कहा	=	कथा	खमा	=	क्षमा
विज्जा	=	विद्या	पाठसाला	=	पाठशाला
सद्दा	=	श्रद्धा	कीडा	=	क्रीडा

क्रिया शब्द

पच	=	पकाना	कन्द	=	रोना
पुच्छ	=	पूछना	भज	=	भजना
भुंज	=	खाना	अच्च	=	पूजा करना
दा	=	देना			

नियम–

1. जिसको देते हैं, उसको सम्प्रदान कहते हैं। सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा– सो विप्पाय धणं देइ।
2. जिस प्रयोजन से कोई कार्य किया जाता है, उस प्रयोजन की चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा– मोक्खाय हरिं भजइ।
3. नमो के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा– महावीराय नमो।
4. जिस पर क्रोध करते हैं, उसकी चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा– सो बालाए कुज्झइ।

****

माला

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	माला	मालाओ, मालाउ
द्वितीया	मालं	मालाओ, मालाउ
तृतीया	मालाअ, मालाइ, मालाए	मालाहि
चतुर्थी	मालाअ, मालाइ, मालाए	मालाणं
पंचमी	मालत्तो, मालाइ, मालाए, मालाअ	मालाहिन्तो
षष्ठी	मालाअ, मालाइ, मालाए	मालाणं
सप्तमी	मालाअ, मालाइ, मालाए	मालासु
संबोधन	हे माले	मालाओ

पढ = पढना (भविष्य काल)

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
प्रथम	पढिहिइ	पढिहिन्ति
मध्यम	पढिहिसि	पढिहिह
उत्तम	पढिहिमि	पढिहिमो

उदाहरण वाक्य—

1. बाला समणाय भोयणं दाहिइ। = बाला श्रमण को भोजन देगी।
2. सा पाठसालं गच्छिहिइ। = वह पाठशाला जायेगी।
3. वीयरागाय नमो। = वीतराग को नमस्कार।
4. नमो जिणाणं। = जिनों को नमस्कार।
5. ते समणाणं सद्दाए वत्थाइं देन्ति=वे श्रमणों को श्रद्धा से वस्त्र देते हैं।

अभ्यास वाक्य—

निम्न वाक्यों का हिन्दी में अनुवाद कीजिए :-

1. तित्थयराणं नमो।
2. सो पोत्थअं पढिहिइ।
3. मोक्खाय हरिं भजइ।
4. वयं आयरियं पासिहिमो।
5. बाला लयं पासिहिइ।

निम्न वाक्यों का प्राकृत में अनुवाद कीजिए :-

1. माला विद्या प्राप्त करती है।
2. श्रद्धा हल्दी खायेगी।

3. राम दूध पीएगा।
4. रमा पूजा करेगी।
5. वह कथा कहेगा।

पाठ-9

इकारांत स्त्रीलिंग शब्द

मइ	=	मति	लच्छी	=	लक्ष्मी
पीइ	=	प्रीति	बहिणी	=	बहिन
बुद्धि	=	बुद्धि	राइ	=	रात्रि
भूमि	=	भूमि	ओसहि	=	औषधि
रुप्पिणी	=	रूक्मिणी	सन्ति	=	शान्ति
मुत्ति	=	मुक्ति	वाणी	=	वाणी
पगइ	=	प्रकृत्ति	सही	=	सहेली
भत्ति	=	भक्ति			

नोट :- दीर्घ इकारांत शब्दों को ह्रस्व हो जाता है उनके रूप भी ह्रस्व इकारान्त की तरह ही चलते हैं केवल प्रथमा, एकवचन, बहुवचन, द्वितीया तथा संबोधन बहुवचन में 'आ' प्रत्यय विशेष लगता है। जैसे लच्छी लच्छीआ।

क्रिया शब्द

कुज्झ	=	क्रोधित होना	दा	=	देना
अज्ज	=	कमाना	वस	=	रहना
नम	=	नमस्कार करना	कर	=	करना
रोअ	=	अच्छा लगना	जुज्झ	=	युद्ध करना

अन्य शब्द

णर	=	मनुष्य	मोयय	=	मोदकं
सुधि	=	विद्वान	दुद्धं	=	दूध
भोअणं	=	भोजन	कुलवइ	=	कुलपति
सत्थं	=	शास्त्र	वत्थु	=	वस्तु

बुद्धि शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	बुद्धी	बुद्धीओ, बुद्धीउ, बुद्धी
द्वितीया	बुद्धि	बुद्धीओ, बुद्धीउ, बुद्धी
तृतीया	बुद्धीअ, आ, इ, ए	बुद्धीहि
चतुर्थी	बुद्धीअ, आ, इ, ए	बुद्धीण
पंचमी	बुद्धित्तो, बुद्धीअ, आ, इ, ए	बुद्धित्तो, बुद्धीहिन्तो
षष्ठी	बुद्धीअ, आ, इ, ए	बुद्धीण
सप्तमी	बुद्धीअ, आ, इ, ए	बुद्धीसु
संबोधन	बुद्धी, बुद्धि	बुद्धीओ, बुद्धीउ, बुद्धी

चतुर्थी विभक्ति के नियम—

1. रोअ (प्रसन्न होना) धातु के समान अर्थ वाली धातुओं के योग में प्रसन्न होने वाला सम्प्रदान कहलाता है तथा सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे— मम तव वियारो रोयइ = मुझे तुम्हारा विचार अच्छा लगता है।

उदाहरण वाक्य—

1. अहं बालस्स फलं दामि। = मैं बालक के लिए फल देता हूँ।
2. सन्तीअ झाइ। = शान्ति के लिए ध्यान करता है।
3. राईअ आगच्छइ। = रात्रि में आता है।
4. सो बहिणीए धणं दाही। = उसने बहिन के लिए धन दिया।
5. रुप्पिणी मम बहिणी अत्थि। = रूक्मिणी मेरी बहन है।

हिन्दी से प्राकृत में अनुवाद कीजिए :-

1. राजा शत्रु के लिए क्रोधित होता है।
2. राजा विद्वान के लिए धन देता है।
3. वे साधु के लिए भोजन देते हैं।
4. वे सब घर के लिए धन कमायेंगे।
5. वह पढ़ने के लिए रहता है।

प्राकृत से हिन्दी में अनुवाद कीजिए :-

1. ते कुलवइस्स नमन्ति।
2. अहं सिस्साय सत्थं दामि।
3. अहं बालाण फलाणि दामि।
4. सो णराण वत्थुणि दाइ।
5. सिसू फलस्स कंदइ।
6. अहं सत्थस्स सिहामि।
7. सुहस्स भत्ती करिहिमो।
8. बालआय मोययं रोअइ।
9. सो सहीअ सह भमणस्स गच्छइ।
10. भूमीअ जुज्झइ।

पाठ–10

शब्द कोष

उकारांत स्त्रीलिंग

धेणु	=	गाय	चमू	=	सैना
लणु	=	शरीर	सासू	=	सासू
रज्जु	=	रस्सी	वत्थु	=	वस्तु
चंचु	=	चोच	अंसु	=	आँसु
बहू	=	वधू			

अन्य शब्द

बाहिर, बहि	=	बाहर	पड़	=	गिरना
गाम	=	गाँव	बीह	=	डरना
पसाअ	=	महल	गवेस	=	खोजना
बाला	=	लड़की	दुगुंच्छ	=	घृणा करना
पुत्त	=	पुत्र	पमाय	=	प्रमाद करना
पाव	=	पाप	डर	=	डरना
गिह	=	घर	विरम	=	निवृत होना
तरु	=	पेड़	अच्छि	=	आँख
अरि	=	शत्रु	पत्तं	=	पत्ता
पक्खी	=	पक्षी			

धेणु शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	धेणू	धेणुणो, धेणू
द्वितीया	धेणुं	धेणुणो, धेणू
तृतीया	धेणूअ, आ, इ, ए	धेणूहि
चतुर्थी	धेणूअ, आ, इ, ए	धेणूहि
पंचमी	धेणुत्तो, धेणूअ, आ, इ, ए	धेणुत्तो, धेणुसुन्तो
षष्ठी	धेणुअ, आ, इ, ए	धेणूण
सप्तमी	धेणुअ, आ, इ, ए	धेणूसु
संबोधन	हे धेणु, धेणू	धेणूणो, धेणू

नोट :– दीर्घ अकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप ह्रस्व उकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों की तरह ही चलते हैं केवल प्रथमा एकवचन, प्रथमा बहुवचन, द्वितीया बहुवचन तथा संबोधन बहुवचन में 'आ' प्रत्यय विशेष लगता है।

पंचमी विभक्ति—

1. जिससे कोई वस्तु अलग होती है उसे अपादान कारक कहते हैं। अपादान में पंचमी विभक्ति होती है। जैसे अस्सत्तो पडइ = घोड़े से गिरता है। यहाँ घोड़े से अलग हो रहा है इसलिए अस्स (घोड़ा) में पंचमी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है।
2. भय अर्थ में भय के कारण में पंचमी विभक्ति आती है। जैसे चोरत्तो बीहइ = चोर से डरता है।
3. घृणा, प्रमाद अर्थ में पंचमी विभक्ति आती है। जैसे पावत्तो दुगुंच्छइ = पाप से घृणा करता है। धम्मत्तो पमायइ = धर्म से प्रमाद करता है।

उदाहरण वाक्य—

1. धेणू गच्छीअ = गाय गयी।
2. बच्छत्तो पत्तं पडीअ = पेड़ से पत्ता गिरा।
3. चमू ठासी = सैना ठहरी।
4. चोरत्तो बीहइ = चोर से डरता है।
5. रस्सित्तो पडइ = रस्सी से गिरता है।

हिन्दी से प्राकृत में अनुवाद कीजिए :-

1. तुमने जल खोजा।
2. हम पाप से घृणा करते हैं।
3. गाँव के बाहर गया।
4. महल से बालक गिरा।
5. लड़की चोर से डरती है।

हिन्दी में अनुवाद कीजिए :-

1. मम पुत्तो पावत्तो दुगुंच्छइ।
2. सो धम्मत्तो पमायइ।

3. गिहत्तो गच्छइ।
4. तरुहिन्तो फलाणि पडइ।
5. चमू अरित्तो दुगुंच्छइ।
6. बालओ पक्खित्तो डरइ।
7. अच्छित्तो अंसुं पडइ।
8. पुप्फत्तो पत्तं पडइ।
9. साहू रागत्तो विरमइ।
10. वहुत्तो वत्थूणि पडत्ति।

परिशिष्ट

पाठ – 6

इकरान्त पुल्लिग शब्दो के रूप

गिरि (पर्वत) शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	गिरी	गिरओ, गिरउ, गिरिणो, गिरी
द्वितीया	गिरिं	गिरिणो, गिरी
तृतीया	गिरिणा	गिरीहि, गिरीहिं, गिरीहिँ
चतुर्थी	गिरिणो, गिरिस्स	गिरीण, गिरीणं
पंचमी	गिरिणो, गिरित्तो, गिरीओ, गिरीउ, गिरीहिंतो	गिरित्तो, गिरीओ, गिरीउ, गिरीहिंतो, गिरीसुन्तो,
षष्ठी	गिरिणो, गिरिस्स	गिरीण, गिरीणं
सप्तमी	गिरिम्मि	गिरीसु, गिरीसुं
सम्बोधन	हे गिरि, गिरी	हे गिरओ, गिरउ, गिरिणो, गिरी

पाठ – 7

उकारान्त पुल्लिग शब्दों के रूप

साहु (साधु) शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथम	साहू	साहओ, साहउ, साहवो, साहुणो, साहू
द्वितीया	साहुं	साहुणो, साहू
तृतीया	साहुणा	साहूहि, साहूहिं, साहूहिँ
चतुर्थी	साहुणो, साहुस्स	साहूण, साहूणं
पंचमी	साहुत्तो, साहूओ, साहूउ, साहूहिन्तो, साहुणो	साहुत्तो, साहूओ, साहूउ, साहुहिन्तो, साहूसुन्तो,
षष्ठी	साहुणो, साहुस्स	साहूण, साहूणं
सप्तमी	साहुम्मि	साहूसु, साहूसुं
सम्बोधन	हे साहु, साहू	हे साहओ, साहउ, साहवो, साहुणो, साहू

पाठ – 8

आकारान्त स्त्रीलिंग शब्द

माला शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	माला	मालाओ, मालाउ, माला
द्वितीया	मालं	मालाओ, मालाउ, माला
तृतीया	मालाअ, मालाइ, मालाए	मालाहि, मालाहिं, मालाहिँ
चतुर्थी	मालाअ, मालाइ, मालाए	मालाण, मालाणं
पंचमी	मालत्तो, मालाओ, मालाउ, मालाहिन्तो, मालाअ, मालाइ, मालाए	मालत्तो, मालाओ, मालाउ, मालहिन्तो, मालासुन्तो
षष्ठी	मालाअ, मालाइ, मालाए	मालाण, मालाणं
सप्तमी	मालाअ, मालाइ, मालाए	मालासु, मालासुं
सम्बोधन	हे माला, माले	हे मालाओ, मालाउ, माला

पढ धातु के रूप भविष्यत्काल

पुरूष	एकवचन	बहुवचन
प्रथम	पढिहिइ, पढिहिए	पढिहिन्ति, पढिहिन्ते, पढिहिरे
मध्यम	पढिहिसि, पढिहिसे	पढिहिह, पढिहित्था
उत्तम	पढिस्सं, पढिस्सामि, पढिहामि, पढिहिमि	पढिस्सामो, पढिहामो, पढिहिमो, पढिस्सामु, पढिहामु, पढिहिमु, पढिस्साम, पढिहाम, पढिहिम, पढिहिस्सा, पढिहित्था

पाठ – 9

इकारान्त स्त्रीलिंग

बुद्धि शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	बुद्धी	बुद्धिओ, बुद्धिउ, बुद्धी
द्वितीया	बुद्धिं	बुद्धिओ, बुद्धिउ, बुद्धी
तृतीया	बुद्धीअ, बुद्धीआ, बुद्धीइ, बुद्धीए	बुद्धीहि, बुद्धीहिं, बुद्धीहिँ
चतुर्थी	बुद्धीअ, बुद्धीआ, बुद्धीइ, बुद्धीए	बुद्धीण, बुद्धीणं
पंचमी	बुद्धित्तो, बुद्धीओ, बुद्धीउ, बुद्धीहिन्तो	बुद्धित्तो, बुद्धीओ, बुद्धीउ, बुद्धिहिन्तो, बुद्धिसुन्तो
षष्ठी	बुद्धीअ, बुद्धीआ, बुद्धीइ, बुद्धीए	बुद्धीण, बुद्धीणं
सप्तमी	बुद्धीअ, बुद्धीआ, बुद्धीइ, बुद्धीए	बुद्धीसु, बुद्धीसुं
सम्बोधन	हे बुद्धि, बुद्धी	हे बुद्धीओ, बुद्धीउ, बुद्धी

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

कक्षा : ग्यारहवीं – जैन सिद्धान्त रत्नाकर (परीक्षा 16 जुलाई, 2017)

समय : 3 घण्टे अंक : 100

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों में से सही उत्तर का क्रमाक्षर कोष्ठक में लिखिए :- 10x1 = (10)

(a) अनास्रवपन को प्राप्त करता है -

(क) संयम से (ख) तप से

(ग) एकाग्रता से (घ) अक्रिया से ( )

(b) एकाग्रता प्राप्त होती है-

(क) योग सत्य से (ख) मनोगुप्ति से

(ग) वचन गुप्ति से (घ) काय गुप्ति से ( )

(c) उदीरणा योग प्रकृतियाँ हैं -

(क) 120 (ख) 122

(ग) 148 (घ) 117 ( )

(d) 8वें गुणस्थान के चौथे भाग में बंध योग्य प्रकृतियाँ हैं -

(क) 59 (ख) 58

(ग) 56 (घ) 26 ( )

(e) 'चमू' का अर्थ है -

(क) सासू (ख) आसूँ

(ग) चोंच (घ) सैना ( )

(f) 'कन्द' का अर्थ है -

(क) भजना (ख) पूजा करना

(ग) पकाना (घ) रोना ( )

(g) दूसरे गुणस्थान में काल करने वाला नहीं जाता है-

(क) नरक गति में (ख) तिर्यंच गति में

(ग) मनुष्य गति में (घ) देव गति में ( )

(h) त्याग पथ अपनाने पर भी भोगों की ओर रुचि होना क्रिया है-

(क)कायिकी (ख) प्रयोग

(ग) प्राद्वेषिकी (घ) समादान ( )

(i) 'कसिणं' का अर्थ है-

(क)अनुक्रम से (ख) सम्पूर्ण

(ग) अंधकार रहित (घ) विशुद्ध ( )

(j) ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है-

(क) सामायिक से (ख)मन गुप्ति से

(ग) काय गुप्ति से (घ) स्वाध्याय से ( )

प्र.2 निम्न प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में दीजिए :- **10x1 = (10)**

(a) निन्दना से पश्चात्ताप होता है। ( )

(b) योग सत्य में प्रवर्त्तमान जीव यथावादी तथाकारी होता है। ( )

(c) असाता का बंध प्रमादी के ही होता है। ( )

(d) चारित्र के अभाव में चतुर्थ गुणस्थानवर्ती देव भी वंदनीय नहीं होता है। ( )

(e) तीसरा गुणस्थान अपर्याप्त अवस्था में प्राप्त नहीं होता है। ( )

(f) अपर्याप्त अवस्था में काल करने वाला नियमा मिथ्यादृष्टि होता है। ( )

(g) प्रथम तीन शुभ संहनन वाले उपशम श्रेणि नहीं कर सकते हैं। ( )

(h) किसी के द्वारा आचरित पाप को प्रकट कर देना समादान क्रिया है। ( )

(i) अनिष्ट संयोग से होने वाली चिन्ता मानसिक शोक है। ( )

(j) असद् की स्थापना करना अचौर्य है। ( )

प्र.3 मुझे पहचानो :- **10x1 = (10)**

(a) मुझसे जीव अपुरस्कार को प्राप्त होता है। .....

(b) मैं इस लोक संबंधी और परलोक संबंधी विषयों की अभिलाषा हूँ। .....

(c) मेरा उदर बादर पृथ्वीकाय के पर्याप्त को ही होता है। .....

(d) मैं अर्थ लोलुपी पुरुषों द्वारा अप्रार्थनीय हूँ। .....

(e) मेरा बंध संयम सापेक्ष है और अप्रमत्त अवस्था में ही होता है। .....

(f) मैं तीर्थंकर नाम कर्म के बंध का ऐसा हेतु हूँ जो चतुर्विध संघ को साता उपजाने से होता हूँ। .....

(g) मुझसे जीव संवर को प्राप्त करता है। .....

(h) मैं चारित्र सम्पन्नता से प्राप्त होता हूँ। .....

(i) मैं अज्ञान का क्षय करता हूँ। .....

(j) चौथे से सातवें गुणस्थान में मेरे अलावा अन्य किसी भी प्रकृति की सत्ता समाप्त नहीं होती है। .....

प्र.4 निम्न प्रश्नों के उत्तर एक-दो पंक्तियों में दीजिए। **14x2 = (28)**

(a) **परात्मनिंदा प्रशंसे सदसद्गुणाच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य। अर्थ लिखिए।**

.....

.....

(b) **योग दुष्प्रणिधानानादर स्मृत्युपस्थापनानि। अर्थ लिखिए।**

.....

.....

(c) **उपधि प्रत्याख्यान से जीव क्या प्राप्त करता है ?**

.....

.....

(d) **सुलभ बोधिता किससे प्राप्ती होती है ?**

.....

.....

(e) **मान-विजय से क्या प्राप्त होता है ?**

.....

.....

(f) **दाता की क्या-क्या विशेषताएँ हैं ?**

.....

.....

(g) **प्रकृति की सत्ता समाप्त कैसे-कैसे होती हैं ?**

.....

.....

(h) **उदीरणा के लिए अनिवार्य तीन बातें लिखिए।**

.....

.....

(i) **जीव अध्यात्म योग के साधनों से युक्त कैसे होता है ?**

.....

.....

(j) **जीव व्यंजन लब्धि कैसे प्राप्त करता है ?**

.....

.....

(k) **चतुर्थी विभक्ति के कोई दो नियम लिखिए।**

.....

.....

(l) **'पढ' क्रिया के भविष्यकाल के रूप लिखिए।**

.....

.....

(m) **नाचना, बोलना, देखना के क्रिया शब्द लिखिए।**

.....

.....

(n) **एक क्षेत्रावगाढ़ संबंध किसे कहते हैं ?**

.....

.....

प्र.5 निम्न प्रश्नों के उत्तर दो-तीन वाक्यों में लिखिए : - **14x3=(42)**

(a) **आलोचना से जीव को क्या लाभ होता है ?**

.....

.....

.....

.....

(b) **क्षमापना से जीव को क्या प्राप्त होता है ?**

.....

.....

.....

.....

(c) **योग निरोध क्रिया को क्रमशः लिखिए।**

.....

.....

.....

.....

(d) **निर्वेद से मोक्ष किस प्रकार प्राप्त करता है ?**

.....

.....

.....

.....

(e) **आठ मदस्थानों को नष्ट किस प्रकार करता है ?**

.....

.....

.....

.....

(f) **मुखवस्त्रिका के कोई दो गुण लिखिए।**

.....

.....

.....

.....

(g) **स्थानक को समझाइए।**

.....

.....

.....

.....

(h) सर्व सावद्य योग से विरत ही वंदनीय-पूजनीय होता है। समझाइए।

.....

.....

.....

.....

(i) गिरि (पर्वत) शब्द के रूप लिखिए।

.....

.....

.....

.....

(j) पाँचवें गुणस्थान में उदय द्वार में छूटने वाली 17 प्रकृतियाँ के नाम लिखिए।

.....

.....

.....

.....

(k) 9वें गुणस्थान के दूसरे भाग में सत्ता में से छूटने वाली 16 प्रकृतियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

(l) सचित्त-संबद्ध-संमिश्राभिषव-दुष्पक्वाहाराः। का अर्थ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

(m) **संवेग से जीव को क्या प्राप्त होता है ?**

.....

.....

.....

.....

(n) **बाह्य कर्मबंध के कारण समान होने पर भी किन कारणों से कर्म बंध में भिन्नता होती है ?**

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....